रसिक अनन्य माल

[महात्मा भगवत् मुदित कृत]

सम्पादक
ललिता प्रसाद पुरोहित

उ० प्र० राज्य साहित्य-परिषद् द्वारा पुरस्कृत

रसिक अनन्य माल

(महात्मा भगवत् मुदित कृत)

प्रकाशक
वेणु प्रकाशन, वृन्दावन

संवत २०१६
प्रथम संस्करण १०००

मूल्य—१· ७५ न. पै.

मुद्रक—
ला० छाजूराम रानीला वाले
श्री प्रेस वृन्दावन

प्रस्तावना

श्री रसिक अनन्यमाल हिन्दी के चरित्र-साहित्य का एक अनूठा काव्य-ग्रन्थ है जिसमें सगुण उपासना की एक शाखा-विशेष के उद्भव और विकास के सवासौ वर्षों का परिचय मिलता है। नाभादास कृत भक्तमाल केपश्चात् रचे गये अनेक चरित्र-ग्रन्थों की तुलना में महात्मा भगवत् मुदित द्वारा किया गया यह प्रयास कई बातों में सबसे विलक्षण है। इसमें ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रवृत्ति दिखलाई देती है जो उस युग के लिये एक दुर्लभ बात है। महात्मा भगवत् मुदित जी स्वयं चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी थे और राधावल्लभ सम्प्रदाय के रस-सिद्धान्त से आकृष्ट होकर इस रस के रसिकों का चरित्र लिखने मे प्रवृत्त हुये थे अत: वे उस तटस्थता का निर्वाह कर सके जो ऐतिहासिक चरित्र-लेखन के लिये आवश्यक होती है। उन्होंने कई चरित्रों का वर्णन सम सामयिक राजनीतिक इतिहास की सही पृष्ठ-भूमि रखकर किया है और कई चरित्रों में घटनाओं के सही संवत दिये है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेकों ग्रन्थों की भाँति यह ग्रन्थ भी अभी तक हस्तलिखित पोथी के रूपी में रहा आया और भक्त लोग इसमें वर्णित चरित्रों के द्वारा भक्ति-भाव की प्रेरणा ग्रहण करते रहे।

विक्रम की सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में सगुण उपासना के अतर्गत जब वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों के माध्यम से कृष्ण-भक्ति का विकास होरहा था, उसी समय श्री हित हरिवंश गोस्वामी (१५५९-१६०९) मधुर उपासना के एक नवीन सम्प्रदाय का स्थापन कर रहे थे। 'रसिक अनन्य माल' का परिचय देने के पूर्व श्रीहिताचार्य के मत पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना समीचीन होगा। श्रीहित महाप्रभु के मत में प्रेम किंवा हित को परात्पर तत्व माना जाता है। सोलहवी शती में स्थापित होने वाली सभी प्रेमोपासक सम्प्रदाय प्रेम-स्वरूप भगवान को परतत्व मानती हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय में 'प्रेम स्वरूप भगवान' के स्थान में 'भगवत-स्वरूप प्रेम' को परतत्व मानती है। 'प्रेम स्वरूप भगवान' की उपासना करनेवाले सम्प्रदायों में प्रेम को भगवान की अभिन्न शक्ति माना जाता है, 'भगवत् स्वरूप प्रेम' को

उपास्य मानने वाले राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम को भोक्ता और भोग्य के बीच स्थित एक परम मधुर सम्बन्ध माना गया है और प्रेम की रचनाके लिये भोक्ता, भोग्य और उनके प्रेम-सम्बन्ध को अनिवार्य बतलाया गया है। प्रेम-सम्बन्ध को शास्त्रीय परिभाषा में 'प्रेरक-प्रेम' कहा जाता है और अद्वय प्रेम-तत्व को भोक्ता, भोग्य और प्रेरक-प्रेम के त्रिविध रूप में नित्य व्यक्त माना जाता है। श्वेताश्वतर श्रुति ने त्रिविध ब्रह्म-स्वरूप का वर्णन किया है और उस अद्वय ब्रह्म के तीनों रूपों में परस्पर भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का सम्बन्ध माना है—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं न किञ्चित् ।
भोक्ता भोग्य प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥

(श्वेता० १-२१)

परात्पर प्रेम किंवा हित-तत्व के प्राकट्य की चार भूमिकाये मानीं गई हैं। प्रथम एव शुद्धतम भूमिका 'निकुंज' है जहाँ यह हित-तत्व श्री नन्दनन्दन, श्रीवृषभानु नन्दिनी, सहचरिगण, एवं श्रीवृन्दावन के रूप में नित्य प्रकट रहता है। द्वितीय भूमिका 'व्रज' है। इस भूमिका में प्रेम का प्रकाश प्रथम भूमिका से अनेक अंशों में विलक्षण होता है। दोनों भूमिकाओं में प्रकट होने वाले राधा माधव के नाम-रूप यद्यपि समान हैं, तथापि उनके प्रेम-सम्बन्ध की अभिव्यक्ति भिन्न है। इस भिन्नता के कारण 'निकुञ्ज-लीला' और 'व्रज-लीला' के स्वरूप काफी भिन्न बने हुये हैं। तीसरी भूमिका वह है जहाँ प्रेम विभिन्न अवतारों के रूप मे प्रकट होता है। और चौथी भूमिका यह अनन्त नाम-रूपात्मक दृश्य-अदृश्य प्रपंच है।

प्रेम आस्वादित होकर 'प्रेम-रस' कहलाता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय का अपना एक स्वतंत्र प्रेम-रस-सिद्धान्त है जो गौड़ीय भक्ति-रस परिपाटी की भाँति भरत के नाट्य-शास्त्र पर आधारित नही है इस रस-सिद्धान्त में राधामाधव की प्रीति समान-बल-शालिनी मानी जाती है। श्री हित प्रभु ने 'दम्पति (युगल) में समतूल' (समान) रस की स्थिति मानी है और दोनों को एक-दूसरे के गुण-गणों द्वारा मात (पराजित) बतलाया है।

बनी श्रीहित हरिवंश जोरी उभय गुन-गन मात।

यहाँ का संयोग-विरह-संबन्धी दृष्टिकोण भी अन्य सब सिद्धान्तों से भिन्न है सर्वत्र संयोग वियोग एक के बाद दूसरे के क्रम से आते

जाते रहते हैं। राधावल्लभीय रस-सिद्धान्त में प्रेम की इतनी सूक्ष्म एवं तीव्र स्थिति का सामान्य रूप से ग्रहण हुआ है कि उसमें संयोग और विरह एक काल में ही प्रतिभासित होते रहते हैं। ॐ इस रस रीति की तीसरी विशेषता श्रीराधा की सहज प्रधानता है। नाभा जी ने श्री हितप्रभु को 'श्रीराधा-चरण-प्रधान' कहा है।

श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय का उपासना मार्ग भी अन्य उपासना मार्गों से कई बातों में विलक्षण है। परात्पर प्रेम-तत्व के अंग भूत भोक्ता, भोग्य और प्रेरक उपासना के क्षेत्र में क्रमशः उपासक, उपास्य और गुरु कहलाते हैं। एक ही तत्व के त्रिविध रूप होने के कारण तीनों—उपासक, उपास्य और गुरु—में समान पूज्यता मानी जाती है। इसीलिये इष्ट और गुरु की उपासना के साथ उपासक (भक्त) की उपासना का विधान इस सम्प्रदाय में किया गया है। यह उपासना प्रेम के प्राकट्य की प्रथम भूमिका—निकुञ्ज से-सम्बन्धित है, अतः सम्प्रदाय की सेवा-पद्धति में वैकुण्ठ-लीला से सम्बन्धित शंख, चक्र आदि नहीं रखे जाते और न घंटा पर गरुड़ ही रहता है। शालग्राम-शिला में निकुञ्ज-लीला के चिन्ह वंशी, मोर-मुकुट आदि नहीं है, अतः उसका ग्रहण सेवा में नहीं होता। उसके स्थान में 'नाम-सेवा' का उपयोग होता है। उपासक के सम्पूर्ण मन को एक-मात्र प्रेम-भजन पर केन्द्रित करने के लिये इस सम्प्रदाय में संध्या तर्पण, श्राद्ध आदि वैदिक और स्मार्त कर्मों के प्रति उदासीनता का भाव रक्खा जाता है। इसी प्रकार वैष्णव-धर्म के आधार भूत स्वामी सेवक सम्बन्ध की सर्वांगीण रक्षा के लिये एकादशी के दिन भी भगवत्

ॐ देखिबो जहाँ विरह सम होई-तहाँ कौ प्रेम कहा कहै कोई।
(श्री ध्रुवदास जी)

मिले-अनमिले रहत विवि अंग-अंग अकुलाहिं।
प्रेमहि विरह स्वरूप जहाँ यह रस कह्यौ न जाहिं॥
(श्रीभजनदासजी)

प्रेमी बिछुरत नाहिं कहुँ, मिल्यौ न सो पुनि आहि।
कौन एक रस प्रेम कौ, कहि न सकत ध्रुव ताहि॥
(श्रीध्रुवदासजी)

प्रसाद के त्याग को निषिद्ध बताया है। श्री हिताचार्य के द्वारा एकादशी व्रत का त्याग प्रसिद्ध है। नाभा जी के निम्न लिखित छप्पय में उपर्युक्त सब बातों को लक्षित किया गया है।

(श्री) राधा-चरन प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपती तहाँ की करत खवासी॥
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
विधि-निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी॥
व्यास सुवन-पथ अनुसरै सोई भलैं पहिचानि है।
श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है॥

(भक्त० ९०)

राधाचरण प्रधान—'श्रीहित हरिवंश गोस्वामी की उपासना और रस-पद्धति में श्रीराधा की प्रधानता है।' यह कह कर नाभाजी ने श्रीकृष्ण को प्रधान मानकर चलने वाली सम्प्रदायों से हितमार्ग की विलक्षणता प्रदर्शित की है।

हृदै अति सुदृढ़ उपासी—हित प्रभु अत्यन्त सुदृढ़ भाव से उपासना करते थे।

कुंज केलि... खवासी—श्री हिताचार्य दम्पति (श्यामाश्याम) की कुञ्ज-क्रीड़ा में दासी (सखी) रूप से सेवा करते थे।

सर्वसु महाप्रसाद....ताके अधिकारी—वे व्रत, संयम आदिक सम्पूर्ण साधनों से भगवत् प्रसाद को श्रेष्ठ मानते थे। महा प्रसाद के लिये उनका एकादशी व्रत का त्याग प्रसिद्ध है।

विधि-निषेध....व्रतधारी—उन्होंने श्यामा-श्याम का दासता रूपी उत्कट व्रत धारण किया था और उसके निर्वाह में वे शास्त्र-मर्यादा (विधि-निषेध) की अपेक्षा नहीं रखते थे।

व्यास सुवन....पहिचानि है—श्री व्यास मिश्र के पुत्र श्रीहित हरिवंश गोस्वामी द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदाय (पथ)

का अनुसरण करके ही उनके सिद्धान्तो
के मर्म को समझा जा सकता है।

श्री हरिवंश....जानि है—मार्ग पर चलनेवालों में भी कोई विरला ही
श्री हिताचार्य की भजन की रीति को वास्तविक रूप से समझ सकेगा।

सम्प्रदाय के उपर्युक्त परिचय से यह स्पष्ट है कि इस सम्प्रदाय में प्रेम-रस की उपासना को शुद्ध रखने के लिये अनन्यता का पालन बहुत कड़ाई के साथ किया जाता है। इस सम्प्रदाय के भक्तों को, इसीलिये, 'रसिक अनन्य' नाम से पुकारा जाता है और भगवत् मुदित जी ने, इसीलिये, प्रस्तुत ग्रंथ का नाम भक्तमाल न रखकर 'रसिक अनन्य माल' रखा है।

ग्रन्थकार भगवत् मुदित और ग्रन्थ रचनाकाल

भगवत मुदित जी का परिचय नाभादास जी कृत भक्तमाल के छप्पय सं० १६८ में दिया हुआ है और उसपर प्रियादासजी कृत 'भक्ति-रस बोधिनी' टीका भी प्राप्त है। टीका से मालूम होता है कि भगवत् मुदित जी आगरा के सूबेदार नवाब शुजा-उल्मुल्क के दीवान थे। इनके पिता का नाम माधौमुदितजी था जो नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे। प्रियादास जी ने भगवत मुदित जी को ठाकुर गोविन्द देव जी के अधिकारी श्री हरिदास जी का शिष्य बतलाया है। भगवत् मुदित जी बड़े रसिक थे और वृन्दावनवासी ब्राह्मण, गोस्वामी, साधु, आदि पर अनन्य निष्ठा रखते थे। प्रिया दास जी ने उनकी गुरु-भक्ति और वृन्दावन-निष्ठा के उदाहरण अपनी टीका में दिये हैं। उनके गुरुदेव भी पहुँचे हुये रसिक महानुभाव थे। एक बार गुरुदेव की इच्छा आगरा जाकर अपने शिष्य से मिलने की हुई। भगवत मुदितजी को जब अपने गुरु के आने का समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर अपनी पत्नी से पूछा कि गुरुदेव के आने पर हम लोगों को उनके सत्कार में क्या करना चाहिये? स्त्री ने उत्तर दिया 'घर-द्वार सहित समस्त सम्पत्ति गुरुदेव की भेंट कर दीजिये और अपने पास पहिनने को केवल एक धोती छोड़ दीजिये।' पत्नी की बात सुनकर भगवत् मुदित जी अत्यन्त प्रसन्न हुये और गुरुदेव के स्वागत की तैयारी जोर शोर से करने लगे। इधर उनके गुरु श्रीहरिदास जी ने अपने शिष्य

के इस प्रकार के निश्चय की बात सुनी तो वे मार्ग म से ही वापस वृन्दावन लौट गये। १

भगवत मुदित जी की वृन्दावन-निष्ठा के सम्बन्ध में यह घटना दी हुई है कि उनका अन्त समय आया हुआ जान कर लोग उन्हें आगरा से वृन्दावन ले चले। आधी दूर जाने पर श्री भगवत् मुदितजी को होश आया। उन्होंने दुःखी होकर पूछा—"अरे, मुझे कहाँ लिये जाते हो ?" लोगों ने कहा—"जिसका आप नित्य ध्यान किया करते है उस वृन्दावन को।" उन्होंने कहा—"लौट चलो, यह शरीर वृन्दावन ले जाने योग्य नहीं है। जब यह जलाया जायगा, तो इसमें से उत्कट दुर्गन्ध निकलेगी जो प्रिया-प्रियतम को असह्य होगी। जिसके भाग्य मे जुगल किशोर के चरणों में जाना लिखा है, वह तो जायेगा ही, फिर वृन्दावन के वातावरण को दूषित क्यों किया जाय ?' २ और वे लौट कर आगरा आगये और वहीं शरीर छोड़ा।

---

१ सुनी गुरु आवत, अमावत न कहूँ अंग,
रंग भरि तिया सौं यौं कही, 'कहा कीजिये'।
बोली, 'घरबार पर संपति भंडार सब,
भेंट कर दीजै, एक धोती धारि लीजिये'॥
रीझे सुनि बानी 'सांची भक्त तें ही जानी,
मेरे अति मन मानी,' कहि आँखें जल भीजिये।
याही बात परी कान, श्री गुसाईं लई जान,
आये फिरि वृन्दावन पन मति धीजिये॥
(श्रीप्रियादास कृत भक्तमाल की टीका—६२७)

२ आयौ अंतकाल जानि, बेसुध पिछानि,
सब आगरे तें लैकें चले वृन्दावन जाईये।
आए आधी दूर, सुधि आई, बोले चूर ह्वै कें,
'कहाँ लिये जात कर ?' कही 'जोई ध्याइये'॥
कह्यौ 'फेरौ तन, बन जाइबे कौ पात्र नहीं,
जरें बास आवै प्रिया-पिय कौं न भाईये।
जान हारौ होइ सोई जाइगौ जुगल पास,
ऐसे भाव-रासि ताही ठौर चलि आईये॥
(वही—६२९)

राधा बल्लभीय साहित्य में चाचा हित वृन्दावनदासजी ने अपनी 'रसिक अनन्य परचावली' में भगवत मुदितजी के सम्बन्ध मे एक छप्पय दिया है जिसमें उन्होंने इनको माधौ मुदित जी का पुत्र एव रसिक अनन्य माल का कर्त्ता बतलाया है।[1]

नाभा जी की भक्तमाल में भगवत मुदित जी से सम्बन्धित छप्पय देखकर यह सीधा अनुमान होता है कि वे इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व भक्त-रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। भक्तमाल का रचना-काल अभी तक स्थिर नहीं हो सका है। साधारणत: सं० १६५० और स० १६६५ के वीच में इसकी रचना मानी जाती है किन्तु राधावल्लभीय सन्त स्वामी चतुर्भुजदासजी से सम्बन्धित छप्पय[2] देखकर ऐसा लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना सत्रहवीं शती के अंतिम दशकों मे हुई होगी। चतुर्भुजदासजी द्वारा रचे हुए 'द्वादशयश' प्रसिद्ध हैं। इनमे से 'धर्म विचार यश' की रचना सं० १६८६ में हुई है।[3] नाभा जी ने अपने छप्पय में चतुर्भुजदासजी के अति ही 'निर्दूषन कवित्त' का उल्लेख किया है, जिसमें 'मुरलीधर' की छाप रहती थी। साथ ही उन्होने बतलाया है कि इन्होंने भक्ति-प्रताप का गान किया। 'द्वादशयश' मे भक्ति के प्रताप का ही गान किया गया है और छाप भी 'मुरलीधर'

---

१. परम दया कौ भवन कृपा-करुना उर दरसै।
साधु-सभा सुख देत बचन मनु अमृत बरसै॥
कौतुक मिथुन किशोर स्वाद जुत लीला गाई।
माधौ मुदित रसज्ञ सुवन की कीरति छाई॥
नाम-ठाम-परचै सहित दाम रची जिन मति उदित।
रसिक चरित बरननि किये मन दै श्री भगवत मुदित॥

२. गायो भक्ति-प्रताप सबहि दासत्व दृढ़ायौ।
राधाबल्लभ भजन अनन्यता बरग बढ़ायो॥
'मुरलीधर' की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अँघ्रि-रेनु वहै धारी सिर भूषन॥
सतसंग महा आनन्द में, प्रेम रहत भीज्यो हियौ।
हरिवंश चरण बल चतुर्भुज गौंडदेश पावन कियौ॥भ.मा.१२३

३. संवत सोरह-से चोरासी अधिक द्वि बरस सिरानी जू।
मुरलीधर वर भक्ति चतुर्भुजदास प्रताप बखानी जू॥

ही है। इससे मालूम होता है कि नाभाजी चतुर्भुजदासजी की भक्ति-सम्बन्धिनी एक मात्र रचना 'द्वादश यश' से परिचित थे और यदि यह सत्य अनुमान है तो 'भक्तमाल' की रचना द्वादश यश के बाद मे हुई है। सैकड़ों भक्तों का परिचय देने वाले 'भक्तमाल' जैसे वृहद ग्रन्थ के निर्माण-काल का निर्णय किन्हीं एक या दो भक्तों के उपस्थिति-काल को लेकर नहीं किया जा सकता, यह तो स्पष्ट ही है किन्तु भक्तमाल की रचना सं० १६८६ के बाद मानने पर ही उसके साथ भगवत मुदितजी के काल की संगति बैठती है। भगवत मुदितजी ने सं० १७०७ में 'वृन्दावन महिमामृत' के एक शतक का व्रज-भाषा अनुवाद पूर्ण किया है[1]। उनके गुरु बृन्दावनस्थ गोविन्ददेवजी के तत्कालीन अधिकारी थे। यह मन्दिर राजा मानसिह ने बनवाया था और सं० १६४८ में बनकर पूर्ण हुआ था। मन्दिर में सेवा आरम्भ होने पर प्रथम अधिकारी (प्रधान कर्मचारी) श्री काशीश्वरजी हुए और द्वितीय यह हरिदासजी थे। इस प्रकार हरिदासजी का अधिकार-काल सत्रहवीं शती के अंतिम दशकों में ठहरता है और उसकी संगति भगवत मुदितजी कृत अनुवाद के काल (सं० १७०७) के साथ बैठ जाती है। इसके अतिरिक्त 'रसिक अनन्य माल' का अन्त: साक्ष्य भी भगवत मुदितजी की स्थिति सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध और अठारहवी शती के पूर्वार्ध में ही सिद्ध करता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री हित हरिवंश गोस्वामी के प्रपौत्र श्री दामोदर चन्द्र गोस्वामी के 'शिष्य-प्रशिष्यो' का, ग्रन्थकार के ही कथनानुसार, चरित्र वर्णित है।[2] श्री दामोदर चन्द्र गोस्वामी का निकुञ्ज वास सं० १७१४ में हुआ था।[3] भगवत मुदितजी ने अपने ग्रन्थ को उक्त गोस्वामीजी के शिष्यों के चरित्र वर्णन के साथ समाप्त किया है।

---

१. संवत दस पै सात सै सात बरस हैं जानि।
चैत्र मास में चतुर वर भाषा कियौ बखानि ।।

२. विजय-मूर्त्ति हरिवंश की, हैं प्रपौत्र रसकंद।
रसिक सभा के मुकट मनि, श्रीदामोदर चंद ।।
तिनके सिष्य-प्रसिष्य बहु, रसिक अनन्य प्रसिद्ध।
कछुक कहौं संछेप सौं, उनके गुन तौ वृद्ध।।

३. श्रीहित हरिवंश गोस्वामी: संप्रदाय और साहित्य, पृष्ठ १८

यदि नाभाजी कृत भक्तमाल का रचना-काल सं० १६८०–६५ के लगभग माना जाय तो उसमें दिये हुए भगवत मुदितजी से सम्बन्धित छप्पय को प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा। 'भक्तमाल' हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल में रचा गया प्रथम ब्रज-भाषा ग्रन्थ है जिसमें प्रधानतः उस काल के भक्तों का परिचय सांप्रदायिक पक्षपात से अस्पृष्ट रह कर दिया गया है। स्वभावतः इस ग्रन्थ का प्रचार सब सम्प्रदायों के भक्तजनों में बड़ी तेजी के साथ हो गया। हस्त-लिखित पोथियों के उस युग में, विस्तृत प्रचार हो जाने के कारण, इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या स्थिर न रह सकी। सेंगरजी ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में भक्तमाल में १०८ छप्पय बतलाये हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने भी भक्तमाल और उसके रचयिता का उल्लेख करते हुए छप्पयों की कुल संख्या १०८ ही लिखी है।[1] नागरी-प्रचारिणी की खोज में प्राप्त सबसे प्राचीन प्रति सं० १७७० की है।[2] इसमें छन्द-संख्या १६४ है। भक्तमाल के रूपकलाजी वाले संस्करण में छन्द-संख्या २१४ रखी गई है जो सं० १७७० की प्रति से २० छन्द अधिक है। अंतःसाक्ष्य के आधार पर छन्द-संख्या १६४ भी ठीक नहीं ठहरती। भक्तमाल के वर्तमान संस्करणों में १८८ वाँ छप्पय गोविन्ददासजी 'भक्तमाली' के सम्बन्ध मे है। प्रथम चार पंक्तियों में उनके गुणों का वर्णन करने के बाद, इस छप्पय की शेष दो पंक्तियों में यह बतलाया गया है कि नारायण दासजी (नाभाजी) ने गोविन्ददासजी को जगत का हितकारी और अपने समान गुणशाली देखकर उनके कण्ठ में 'भक्त-रत्नमाल' (भक्तमाल) का विकास किया।[3] स्पष्ट है कि यह छप्पय नाभाजी की रचना नहीं है और भक्तमाल का भक्तों में प्रचार होने के बाद उसमें जोड़ा गया है।

इसके अतिरिक्त भक्तमाल में भगवत मुदितजी से सम्बन्धित छप्पय को संदिग्ध बनाने वाली एक बात यह भी है कि उसमें भगवत

---

1. The Inodern Vernacular Literature of Hindusthan--P. 27
२. खोज विवरण सन् १९२६–२८ पृष्ठ ८०२
३. जानि जगत हित सब गुननि सुसम नराइनदास हिय।
   भक्त रत्न-माला सुधन गोविन्द कण्ठ विकास किय।।

मुदितजी के पिता माधौ मुदितजी का परिचय नहीं दिया हुआ है. माधौ मुदितजी उच्च-कोटि के सन्त थे और उनका नामोल्लेख ध्रुवदासजी की भक्त-नामावली में मिलता है।[१] भक्त-नामावली की रचना भक्तमाल के बाद हुई है। उसमें नारायणदासजी (नाभाजी) के नाम का उल्लेख मिलता है।

यह कैसे सम्भव है कि प्रथम रचे जाने वाले ग्रन्थ में पुत्र का परिचय हो और बाद में रचे जाने वाले ग्रन्थ में पिता का ! भक्त-नामावली की रचना के पूर्व यदि भगवत मुदितजी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके होते तो ध्रुवदासजी उनका परिचय अवश्य देते। विशेषत: उस स्थिति में जब भगवत मुदितजी ने उनकी सम्प्रदाय का प्रथम इतिहास ग्रन्थ लिखकर अपनी अद्भुत उदाराशयता का परिचय दिया था।

भगवत मुदितजी के सम्बन्ध में सबसे अधिक सामग्री 'भक्तमाल' में ही मिलती है किन्तु इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या और रचना-काल अनिर्णीत हैं। अत: इसके आधार पर स्वयं भगवत मुदितजी की रचनाओं में उपलब्ध ऐतिहासिक-साक्ष्य की अवहेलना नहीं की जा सकती।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट के तृतीय त्रैवार्षिक विवरण में लिखा है, "भगवत मुदित ने सन् १६५० (वि० सं० १७०७) में इस रचना (वृन्दावन शतक की टीका) को लिखा है और इसलिए अब उसका समय सही रूप में ले लिया गया है[२]।" 'शोध पत्रिका' उदयपुर में प्रकाशित 'भगवत मुदित कृत ग्रन्थ' शीर्षक वाले निबन्ध में ग्रन्थकार को गौड़ीय सम्प्रदायानुयायी बताया गया है और 'वृन्दावन-शतक' की टीका एवं 'रसिक अनन्य माल' नामक दो ग्रन्थ उनके द्वारा रचित बतलाये गये हैं[३]। मिश्र बन्धुओं ने भी भगवत मुदित जी को सं० १७०७ में विद्यमान माना है किन्तु उनके द्वारा रचे गये दो अन्य

---

१. परमानंद माधौ मुदित, नव किशोर कल केलि।
कहो रसीलो भाँति सौं, तिहि रस में रहे झेलि॥

२. तृतीय त्रैवार्षिक विवरण, टिप्पणी क्रमांक २१

३. शोध पत्रिका, उदयपुर, भाग ८ अंक २–३, लेखक-श्री वेद प्रकाश गर्ग

ग्रन्थ हित चरित्र और सेवक चरित्र बताये हैं तथा उनको राधा-वल्लभीय रसिक कहा है[१]।

हम देख चुके हैं कि भगवत मुदितजी राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे दीक्षित नहीं थे। यह बात 'रसिक अनन्य माल' के कई चरित्रों मे उनके द्वारा की गई श्री चैतन्य-वन्दना से भी स्पष्ट है। किन्तु अपनी कृतियों द्वारा वे इस सम्प्रदाय के अति निकट थे और स्वयं भजन भी राधावल्लभीय रस-पद्धति के अनुकूल रहकर करते थे। उन्होंने वृन्दा-वन शतक की टीका की समाप्ति में अपने भजन को हित-संगी रसिकों के रंग में रँगा हुआ बतलाया है[२]। टीका के मङ्गलाचरण में भी उन्होंने श्री चैतन्य के बाद श्री हरिवंश की वन्दना की है[३]। भगवत मुदितजी द्वारा रचे हुए २०७ पद भी प्राप्त हैं जिनमें राधावल्लभीय रस-पद्धति के अनुकूल रह कर लीला-गान किया गया है[४]।

मिश्र बन्धुओं ने भ्रान्तिवश 'हित-चरित्र' और 'सेवक-चरित्र' को भगवत मुदितजी की रचनायें कहा है। हित-चरित्र के सम्बन्ध मे भ्रान्ति हो जाना तो स्वाभाविक है किन्तु 'सेवक-चरित्र' तो 'रसिक अनन्य माल' में वर्णित एक चरित्र है, कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

---

१ मिश्र वन्धु विनोद, भाग २, पृष्ठांक ४५५

२. इष्ट चंद गोविन्द वर राधा-जीवन प्रान-धन।
हित-संगी रंगी भजन कहत सुनत कल्याण वन ।।वृं०श० पृ० ९०

३. जै-जै श्री हरिवंश हंस हित कोविद वानी।
ललिता ललित प्रशंश केलि-कल-दसा बखानी।।
जै-जै श्री परबोध मोद वृन्दावन गायो।
बहु विध हरख हुलास वास यह वचन दृढ़ायो।।
श्री सत्य सनातन-रूप जय नाना आरति मन हरन।
जै श्री हरिदास अनन्य जय कुञ्ज विहारी हित-करन।।

वृन्दा० श० पृ० २

भगवत मुदितजी कृत 'वृन्दावन शतक' की टीका काम-वन वाले गौडीय बाबा वंशीदासजी द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है। उपर्युक्त उद्धरण उक्त संस्करण में से दिये गये हैं।

४. यह पद श्री राधावल्लभीय आचार्य गोस्वामी नवललाल जी के पास संगृहीत हैं।

रसिक अनन्य माल की प्राप्त होने वाली लगभग सभी प्रतियों में आरम्भ में श्री हित-चरित्र लग रहा है जो महात्मा उत्तमदास जी की रचना है। उत्तमदास जी ने 'रसिक अनन्य माल' में सम्प्रदाय के आद्याचार्य का चरित्र न देखकर उसे अपनी ओर से जोड़ दिया है और साथ ही भगवत मुदितजी कृत ग्रन्थ में दिये हुए रसिकों के चरित्रों का संक्षेप करके अपनी रचना में दे दिया है[1]। इससे यह भ्रम होता है कि हित-चरित्र भी भगवत मुदितजी का लिखा हुआ है।

'रसिक अनन्य माल' में रचना-काल नहीं दिया हुआ है, किन्तु इस ग्रन्थ में, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, श्री हिताचार्य के प्रपौत्र श्री दामोदरचन्द्र गोस्वामी के शिष्य-प्रशिष्यों की कथा वर्णित है, अतः उक्त गोस्वामी जी के जीवन के अन्तिम वर्षों में या उनके निकुञ्ज-वास (सं० १७१४) के थोड़े दिन बाद इस ग्रन्थ की रचना होने का अनुमान होता है[2]।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में भगवत मुदितजी तथा 'रसिक-अनन्य माल' सम्बन्धी निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

१. भगवत मुदितजी गौड़ीय शिष्य-परम्परा के महात्मा थे और राधावल्लभीय सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं थे।
२. उनके पिता का नाम श्री माधौ मुदित और गुरु का नाम श्री हरिदासजी था।
३. वे विक्रम की सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध से लेकर अठारहवीं शती के आरम्भिक दशकों तक विद्यमान थे।
४. 'रसिक अनन्य माल' की रचना सं० १७०७ और १७२० के मध्य में हुई थी।
५. 'हित-चरित्र' और 'सेवक-चरित्र' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना उनके द्वारा नहीं हुई।
६. उनके द्वारा रचित ग्रन्थ केवल दो है, श्री वृन्दावन महिमामृत के एक शतक का ब्रज-भाषा काव्यानुवाद और रसिक अनन्य माल।

---

१. इते रसिक की परचई, भगवत मुदित बखानि।
दिग्दर्शनवत एक ठाँ, 'उत्तम' कीन्हे आनि॥ उत्तमदासजी

२. श्री ललिताचरण गोस्वामी रचित 'श्रीहित हरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य' में भी लगभग यही काल स्थिर किया गया है।

※ राधावल्लभ सम्प्रदाय में इतिहास-ग्रन्थों की परम्परा ※

सम्प्रदाय में भक्तों का इतिहास लिखने की परम्परा नाभाजी की भक्तमाल के बाद में आरम्भ हुई है। ध्रुवदासजी ने अपनी 'भक्त-नामावली' के अन्त में नारायनदास जी उर्फ नाभाजी का उल्लेख किया है और यह कहा है कि उन्होंने हृदय में दृढ़ प्रीति रखकर जिस भक्त की जैसी रीति (भजन-रीति) थी, उसका अच्छे प्रकार से वर्णन किया है[1]।

वास्तव में, नाभाजी ने भक्तों का चरित्र-वर्णन न करके उनकी भावप-द्धति का ही प्रधान रूप से वर्णन किया है और कहीं-कहीं उनके जीवन की दो-एक प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कर दिया है। ध्रुवदास जी ने अपनी भक्त-नामावली में नाभाजी की वर्णन-शैली का ही अनु-सरण किया है। उनकी उक्त रचना राधावल्लभीय सम्प्रदाय में इस दिशा में प्रथम प्रयास है। ध्रुवदासजी की भक्त-नामावली का क्षेत्र नाभाजी के बराबर विशाल तो नहीं है किन्तु उसमें राधावल्लभीय रसिकों के अतिरिक्त अनेक भक्तों का परिचय दिया गया है।

ध्रुवदासजी के बाद ही भगवत मुदितजी आ जाते हैं। इनके रसिक अनन्य माल में रसिकों का वास्तविक रूप में चरित्र-वर्णन हुआ है और इस दृष्टि से यह ग्रन्थ पुष्टि-मार्ग के श्रीगोकुलनाथ गोस्वामी कृत 'चौरासी वैष्णवनि की वार्ता' की पंक्ति में आता है। यद्यपि इस ग्रन्थ में तीन दर्जन से कुछ अधिक रसिकों का ही चरित्र-चित्रण किया गया है, तथापि यह चित्रण चरित-नायकों का सजीव चित्र खड़ा करता हुआ-सा बन पड़ा है। दूसरी ओर उसमें सर्वत्र भक्ति की स्रोत-स्विनी प्रवाहित होती चली है।

महात्मा भगवत मुदितजी के पश्चात् एक पूर्ति-ग्रन्थ के रूप में उत्तमदासजी द्वारा 'अनन्य-माल' की रचना हुई। इसमें प्रथम बार श्रीहित हरिवंश गोस्वामीका चरित्र वर्णित हुआ है। हिताचार्य प्रभु के चरित्र को छोड़ दिया जाय तो इस ग्रन्थ को रसिक अनन्य माल की अनुक्रमणिका कहना ही उपयुक्त होगा। इसीलिए, इसको 'रसिक-

---

१. भक्त नारायण भक्त सब, धरैं हिये दृढ़ प्रीति।
बरनी आछी भाँति सौं, जैसी जाकी रीति ॥
(भक्त-नामावली

अनन्य माल' के साथ जोड़ दिया गया है।

इसी काल में गो० दामोदर वरजी के शिष्य महात्मा प्राणनाथ जी ने अपने गुरु का चरित्र, उन्हीं के मुँह से सुना हुआ, प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा है। सम्प्रदाय के चरित्र-साहित्य में यह एक अनोखी चीज है। प्राणनाथजी सुकवि हैं और उन्होंने इस चरित्रको बड़ी लगन और निष्ठा के साथ लिखा है। दुर्भाग्य से यह अभी तक अप्रकाशित है।

संवत् १७६० में श्री जयकृष्णजी द्वारा 'हितकुल-शाखा' नामक ग्रन्थ की रचना हुई, जिसमें श्री हिताचार्य का एवं उनके वंशज गोस्वामियों का क्रम, उनका काल तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनायें दी गई हैं। यह ग्रन्थ काल-क्रम सम्बन्धी सुस्पष्टता के कारण विशेष ऐतिहासिक महत्व रखता है।

इस सम्प्रदाय के महान् आचार्यों में से अन्यतम श्री रूपलाल गोस्वामी (सं० १७३७–१८०१) के नामसे ब्रज-भाषा गद्यमें श्रीहरिदास स्वामी, श्री हरीराम व्यास, श्री गोपाल भट्ट और राजा नरवाहन के चरित्र प्राप्त हैं। उनका ब्रज-भाषा पद्य में लिखा हुआ 'हित-चरित्र' भी मिलता है, जो उत्तमदासजी द्वारा रचित 'हित-चरित्र' से अधिक समृद्ध है।

गोस्वामी रूपलाल जी के यशस्वी शिष्य चाचा हित वृन्दावन दास ने विपुल ऐतिहासिक साहित्य की रचना की है। उन्होंने अपने समय तक के रसिकों एवं आचार्यों का परिचय अपनी 'रसिक अनन्य परचावली' में दिया है और अपने गुरुदेव का विशद चरित्र 'श्रीहित रूप चरित्र बेली' (सं० १८२०) में लिखा है। 'श्री हरिवंश सहस्र नाम' (सं० १८१२) में उन्होंने श्री हिताचार्य का चरित्र-वर्णन किया है और 'श्री हित बाल-चरित्र' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा है। 'हित-कल्पतरु'[1] (अपूर्ण) में उन्होंने श्री हिताचार्य के चारों पुत्रों का वंश-वर्णन किया है। 'गुरु कृपा चरित्र बेली' (सं० १८०७) में उन्होंने अपने ज्येष्ठ समकालीन महात्मा जुगलदासजी का चरित्र-वर्णन किया है। 'हरि-कला बेली' (सं० १८१७) में सं० १८१३ और सं० १८१७ मे वृन्दावन में होने वाले मुसलमानों के उपद्रव का इतिहास दिया है। 'भक्त-प्रसाद बेली' और 'हरि-प्रताप बेली' (सं० १८०३) में प्रसिद्ध भक्तों का परिचय दिया गया है। चाचाजी का साहित्य बहुत विशाल

है और उसका बहुत बड़ा अश अभी अप्रकाशित है। लेखक ने जो कुछ थोड़ा-सा देखा है उसके आधार पर ऊपर लिखे निर्देश किये हैं।

सं० १८२४ में गो० चन्द्रलाल जी ने 'वृन्दावन प्रकाश माला' नामक एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ की रचना की जिसमें उन्होंने अपने समकालीन प्रसिद्ध राधावल्लभीय सन्तों का निकट परिचय दिया है। इस ग्रन्थ से तत्कालीन वृन्दावन का विशद भौगोलिक परिचय भी प्राप्त होता है और अन्य सम्प्रदाय के पहुँचे हुए महात्माओं के सम्बन्ध में भी अनेक बातें ज्ञात होती हैं।

इसी काल में (सं० १८४४) महात्मा गोविन्द अलिजी ने अपनी 'रसिक अनन्य गाथा' में आरम्भ से लेकर अपने काल तक के राधावल्लभीय रसिकों का परिचय दिया है। ग्रन्थ के आरम्भ मे आचार्य कुल के प्रसिद्ध महात्माओं के परिचय भी दिये गये हैं।

श्री चतुर शिरोमणि लाल गोस्वामी के शिष्य श्री शंकरदत्तजी (शकर कवि) ने संस्कृत में 'श्री हरिवंश-वंश-प्रशस्ति' नामक वृहद ग्रन्थ १८ सर्गों में रचा है। इसके प्रारम्भिक सर्गों में नारायण से लेकर अपने गुरु तक का वंश-वर्णन वड़े विस्तारपूर्वक और कवित्व-पूर्ण ढग से किया गया है। पीछे के सर्गों में हित प्रभु के प्रधान शिष्यों का चरित्र लिखा है और अंतिम—अठारहवें सर्ग में—अपने वंश का परिचय दिया है। यह ग्रन्थ सवत् १८५४ में पूर्ण हुआ है।

श्री प्रियादास शास्त्री पटना वालों ने संवत् १९१४ में संस्कृत मे 'सुश्लोक मणिमाला' की रचना की। यह रसिक अनन्य माल की सस्कृत भाषान्तर है, किन्तु चरित्रों का वर्णन कवित्व पूर्ण ढंग से किया गया है। 'हित-कथामृत तरङ्गिणी' (संस्कृत) में हित प्रभु का चरित्र वर्णित है। प्रथम तरङ्ग में हित अवतार का उपक्रम वर्णन, द्वितीय मे वश-वर्णन, तृतीय में नृसिंहाश्रमजी से वर-प्राप्ति का वर्णन, चतुर्थ मे प्रादुर्भाव वर्णन और पञ्चम में बाल-लीलाओं का वर्णन है। शास्त्रीजी के द्वारा रचित एक 'प्रकाशानंद पूर्व संज्ञा' नामक छोटा-सा ग्रन्थ भी प्राप्त है जिसमें श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती का इतिहास दिया हुआ है।

आधुनिक काल में श्री गोपालप्रसाद रैसलपुर वालों ने 'रसिक अनन्य वैष्णव वार्ता' नामक ग्रन्थ बनाया। गोस्वामी गोवर्धनलालजी 'प्रेम कवि' ने 'कर्मठी चरित्र' लिखा और पंडित प्रियादास शुक्ल ने 'राधावल्लभ भक्तमाल' नामक ग्रन्थ की रचना की।

ग्रन्थ-समीक्षा

'रसिक अनन्य-माल' में श्री हिताचार्य के वृन्दावन-आगमन (सं० १५६१) से लेकर उनके प्रपौत्र श्री दामोदर चन्द्र गोस्वामी के निकुञ्ज-गमन (सं० १७१४) तक के १२३ वर्षों का इतिहास प्राप्त होता है। इस अवधि के उत्तर भाग में भगवत मुदित जी स्वयं जीवित थे अतः उन्होंने प्रारम्भिक काल के रसिकों का इति-वृत्त 'सन्तों के मुख से सुनकर' लिखा है और उत्तर काल के रसिकों का चरित्र अपनी निजी जानकारी के आधार पर लिखा है। प्रारम्भिक रसिकों की 'परचइयों' को देखने से मालूम होता है कि ग्रन्थकार ने उनको भी पूरी खोज-बीन के बाद लिखा है और उनमें अधिक से अधिक जान-कारी देने का प्रयास किया है। श्री दामोदर स्वामी को छोड़कर 'रसिक-अनन्य-माल' में वर्णित सब रसिक गण श्री हिताचार्य अथवा उनके वंशज आचार्यों के शिष्य हैं। भगवत मुदित जी ने रसिकों के चरित्रों में उनके गुरुओं के नाम दिये हैं। हित-कुल के आचार्यों का समय निर्धारित है अतः रसिकों के समय-निर्धारण में गुरुओं के नामो से काफी सहायता मिल जाती है। इसी प्रकार, रसिकों के पूर्व-जीवन का थोड़ा-बहुत वृत्त देने की चेष्टा भी उन्होंने लगभग प्रत्येक चरित्र में की है।

इस ग्रन्थ के कई रसिक तत्कालीन मुगल-शासन में उच्च पदस्थ कर्मचारी थे और कई विविध कारणों को लेकर राज्य-सत्ता के सम्पर्क में आये थे। सुन्दर दासजी कायस्थ रहीम खानखाना के दीवान थे और उन्होंने राधावल्लभ जी का विशाल मन्दिर बनवाया था। भगवत मुदितजी के अनुसार यह मन्दिर श्री वन चन्द्र गोस्वामी की आज्ञा से उनके जीवन-काल में बना था। श्री वनचन्द्रजी का निकुञ्ज-वास सं० १६६५ में हुआ था अतः यह मन्दिर उक्त संवत् से पूर्व बन चुका था। सुन्दरदास जी के चरित्र में यह भी कहा गया है कि मन्दिर-निर्माण के एक वर्ष बाद उनका देहान्त हो गया था और श्री वन चन्द्रजी ने उनकी समाधि का निर्माण कराया था।

अँग्रेज इतिहास-कार इस मन्दिर के निर्माण-काल के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। प्रो० विल्सन ने इसका निर्माण-काल सं० १६४१ बतलाया है। मन्दिर के द्वार पर लगा एक शिला-लेख देखकर उन्होंने

यह काल निर्धारित किया है.[१] मथुरा ममायस के लेखक ग्राउस ने मंदिर की दीवाल पर उत्कीर्ण एक लेख के आधार पर इसका निर्माण स० १६८४ में माना है।[२] प्रो० विल्सन ने जिस शिलालेख का उल्लेख किया है वह अब उक्त मन्दिर के द्वार पर विद्यमान नहीं है, किन्तु ग्राउस का बताया हुआ लेख द्वार के चौखूटे खम्भ पर उत्कीर्ण है। इस लेख में सं० १६८४ के साथ दो सिलाटों (संगतराशों) के नाम खुदे हुये हैं।[3] इस लेख के ऊपर पुनः दो संगतराशों के नाम उत्कीर्ण है।[४] इसमें संवत नहीं है, किन्तु यह लेख नीचे वाले लेख से स्पष्टरूप से प्राचीन है। यह दोनों लेख बाईं तरफ के खम्भे पर हैं। दाहिनी ओर के खम्भे पर ऊपर वाले लेख की प्रतिलिपि दी हुई है। इन तीनों लेखों में कहीं भी, प्रो० विल्सन द्वारा देखे हुए शिलालेख की भाँति, मन्दिर के निर्माण का उल्लेख नहीं है। अनुमानतः ऊपर वाले लेख में मन्दिर का निर्माण करने वाले संगतराशों के नाम हैं और नीचे वाले में मन्दिर की मरम्मत करने वाले सिलाटों (संगतराशों) के नाम खुदे हैं। इन लेखों में मन्दिर-निर्माण का कोई उल्लेख नहीं है। अतः स० १६८४ को मन्दिर का निर्माण-काल नहीं माना जा सकता।

---

1. He also erected a temple there that still exists and indicates by an inscription over the door that it was dedicated to Shri Radhavallabh by Hari-vamsh in Samvat 1641 or A. D. 1585.

Hindu Religions, H. Wilson, Page 116.

2. There are several inscriptions rudely scrawled on the walls, but the oldest at present visible bears the date of Samvat 1684 (1627 A.D.)

Mathura District Memoir : Growse, Part I
Page 120-121

३. 'सम्वत् १६८४ वर्षे श्रावण वद ११ सके (?) पं० लह (?) का पं० भीणजी सिलाट।'

४. 'वृन्दावनदास घरावरी गोपालदास सुतः दमोदर संग-तराश।'

श्री हिताचार्य ने वृन्दावन में अन्य दो स्थानों—सेवाकुंज और रासमण्डल—की स्थापना की थी। इनमें से रासमण्डल पर एक शिलालेख लगा हुआ है जिससे मालुम होता है कि श्री वनमालीदास (श्रीवनचन्द्र गोस्वामी) के जीवन-काल में उनके शिष्य भगवानदास स्वर्णकार ने सं० १६४१ में रासमण्डल के मन्दिर का निर्माण कराया था।[1] 'रसिक अनन्यमाल' के अनुसार राधावल्लभ जी का विशाल मन्दिर तीन वर्ष में बन कर तैयार हुआ था। रासमण्डल वाला मन्दिर बहुत छोटा है। राधावल्लभ जी के मन्दिर का निर्माण-कार्य आरम्भ होने के बाद श्रीवनचन्द्र जी के शिष्य भगवानदास स्वर्णकार को प्रेरणा मिली होगी और उसने बड़े मन्दिर के साथ अपना छोटा-सा मन्दिर बनवाकर तैयार कर दिया होगा। अतः रासमण्डल के शिलालेख से भी राधावल्लभ जी के प्राचीन[2] मन्दिर का निर्माण-काल सं० १६४१ ही पुष्ट होता है। अकबर के धर्म-सहिष्णु शासन काल में वृन्दावन की भूमि पर बनने वाला यह सर्व प्रथम मन्दिर है। इसके बाद सं० १६४७–४८ में राजा मानसिंह द्वारा श्रीगोविन्ददेवजी के मन्दिर का निर्माण हुआ। भगवत् मुदित जी ने बतलाया है कि राजा मानसिंह मन्दिर-निर्माण की इच्छा लेकर पहिले श्रीवनचन्द्र गोस्वामी के पास आये थे, किन्तु उक्त गोस्वामी जी के यह कहने पर कि जो व्यक्ति मन्दिर बनवायेगा, वह एक वर्ष के बाद मर जायगा वे निराश होकर 'अन्यत्र' चले गये। इसी प्रकार गोपालसिंह जादौ ने भी यह कार्य करना चाहा था, किन्तु उक्त शर्त के कारण उनका भी साहस नहीं हुआ। अन्त में सुन्दरदास जी ने श्रीवनचन्द्र गोस्वामी की शर्त मानी और मन्दिर-निर्माण के ठीक एक वर्ष बाद भगवत्-सान्निध्य प्राप्त किया।[3]

---

१. 'श्रीराधावल्लभो जयति, सं० १६४१ वर्षे आषाढ़ बदी २ शुभ दिने श्रीमद् हरिवंश गोस्वामिनः सदन तस्यात्मज श्रीमद्वनमालीदासस्य विद्यमाने तद्भृत्य भगवानदास स्वर्णकारेण कृतंबिक्रुसुतेन।

—रासमण्डल के शिलालेख की प्रतिलिपि

२. वर्तमान में श्रीराधावल्लभजी का स्वरूप सुन्दरदासजी वाले मन्दिर के पार्श्व में बने नवीन मन्दिर में विराजमान है। प्राचीन मन्दिर औरङ्गजेब द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था।

३ रसिक अनन्यमाल' पृष्ठ ४४ ४५

नवलदास जी के चरित्र में भगवत् मुदित जी ने एक राजनैतिक घटना का उल्लेख किया है। घटना तो उन्होंने सही रूप में लिख दी है, किन्तु नामों में भूल हो गई है। उन्होंने लिखा है—

बहुरि हुमायूँ कौ भयौ राज। हेमू मारचौ बैठ्यौ गाज॥
साह कही बनियनिकौं ल्यावहु। मारौ सबनि जहाँ लगि पावहु॥

इतिहास के अनुसार हेमू को अकबर के संरक्षक बैरम खाँ ने मारा था, हुमायूँ ने नहीं। अतः उसीने हेमू के सजातीय दूसर बनियों को पकड़ने की आज्ञा दी होगी। वास्तव मे, हुमायूँ का मरना, अकबर का गद्दी पर बैठना और हेमू का शाही सेना के मुकाबले पानीपत के मैदान में पराजित होना, ये सब एकही साल (सन् १५५६) की घटनाये हैं। अतः तिथिवार इन घटनाओं का स्मरण अथवा सही उल्लेख उस काल में सम्भव नहीं था जब रसिक अनन्य माल की रचना हुई थी।

भाषा और शैली—

भगवत मुदित व्रज के निकट अग्रवन (आगरा) के रहने वाले थे, अतः व्रजभाषा उनकी मातृभाषा थी। इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक व्रजभाषा पर्याप्त समृद्ध हो चुकी थी। इस ग्रन्थ की रचना मे भगवत मुदितजी का उद्देश्य, भक्तों के चरित्र-वर्णन द्वारा, सामान्य जनता में भक्ति और सदाचार का प्रचार करना था, अतः उन्होंने इसमें बोलचाल की व्रजभाषा का ही अधिक प्रयोग किया है और यथासम्भव संस्कृत के कठिन शब्दों को नहीं आने दिया है। राधावल्लभीय रस-भक्ति-सिद्धान्त को कथा-प्रबाह में डाल कर उन्होंने बहुत सरल बनाया है और सम्प्रदाय के प्रारम्भिक युग के ओज और तेजस्विता का परिचय प्रायः प्रत्येक चरित्र में दिया है।

रसिक अनन्य माल की रचना दोहा-चोपाईयों में हुई है। हिन्दी के प्रेममार्गी सूफी कवि और महाकवि तुलसीदास अपने प्रबन्ध-काव्यो मे इन छन्दों का सफल उपयोग कर चुके थे और घटनाओं के वर्णन के लिये ये छन्द बहुत उपयुक्त सिद्ध हो चुके थे। भगवत मुदितजी को प्रधानतया रसिक-भक्तों की जीवन-घटनाओं का वर्णन करना था अतः उनके द्वारा इन छन्दों का उपयोग उचित ही है।

रसिक अनन्य माल की प्रतियाँ—

इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ सम्प्रदाय के लोगों के पास है। इनमें सब से अधिक प्राचीन प्रति सं० १७८९ की है। यह प्रति लगभग ८ इञ्च लम्बी और ६ इञ्च चौड़ी है और कई हलके रङ्ग के कागजों पर लिखी हुई है। इसके अक्षरों और कलेवर पर प्राचीनता की स्पष्ट छाप है। इस प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है— इति श्रीरसिक अनन्य माल सम्पूर्ण। सम्वत् १६८९ आश्विन मासे कृष्ण पक्षे तिथौ द्वितीयायां आदित्य वासरे पोथी लिखितं भूधरदास कायस्थ भटनागर पोथी लिखियित साहजी श्रीसाहिबरायजी। शुभमस्तु। मांगल्यंददात्। रसिक अनन्य माल की अन्य प्रतियों की भाँति इस प्रति के आरम्भ मे उत्तमदास जी की 'अनन्यमाल' लगी हुई है जिसमें अन्य रसिकों के साथ श्रीहितहरिवंश गोस्वामी एवं श्री हरिदास स्वामी के 'परिचय' दिये गये हैं। यह प्रति राधावल्लभीय सन्त बाबा बैजनाथ जी के पास सुरक्षित है।

इस प्रति के अतिरिक्त लेखक ने ग्रन्थ-सम्पादन में अन्य चार प्रतियों का उपयोग किया है, जिनमें से एक प्रति सुहृद श्रीकीर्तिवल्लभ जी के माध्यम से, दूसरी राधावल्लभ जी के मन्दिर में दीर्घकाल से निवास करने वाले एकान्तसेवी बाबा श्री ध्रुवअलिशरणजी से, तीसरी श्री वृन्दावनवल्लभ जी गोस्वामी से और चौथी श्री प्रमोदचन्द्र जी गोस्वामी से प्राप्त हुई। बाबा ध्रुवअलिशरण जी वाली प्रति के अन्त मे पुष्पिका नहीं है, किन्तु अन्तिम पृष्ठ पर नीचे की ओर 'सं० १७७३ बैशाख वदी ११' लिखा हुआ है। स्वयं बाबाजी भी इस प्रकार दिये गये सम्वत् की प्रामाणिकता को संदिग्ध मानते हैं।

'रसिक अनन्य माल' की उक्त पाँचों प्रतियों के पाठ में विशेष अन्तर नहीं है। लिखियों ने अपने ज्ञान और रुचि के अनुसार यत्र-तत्र शब्दों और मात्राओं में हेर-फेर किया है, किन्तु वह अधिक प्रभावशाली नहीं है। लेखक ने, जैसा ऊपर कहा गया है, सं० १७८९ की प्रति के पाठ का अनुसरण किया है, किन्तु जहाँ एक या आधी मात्रा कम कर देने या बढ़ा देने से छन्द-दोष दूर होता मालुम हुआ है वहाँ वैसा कर दिया है। उदाहरण के लिये—'जहाँ-तहाँ' के स्थान मे 'जहँ-तहँ' और 'जहँ-तहँ' के स्थान में 'जहाँ-तहाँ' करके छन्दोभङ्ग नहीं होने दिया है

इस ग्रन्थ मे एक श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती की परचई ही ऐसी

है। जिसमे, सं० १७८६ की प्रति के बाद की लगभग सब प्रतियो मे, कुछ छन्द बढ़े हुए हैं। इन प्रतियों में इस 'परचई' की चौपाई क्रम-संख्या ३० के बाद निम्नलिखित छन्द अधिक मिलते हैं—

कहन रहन सब रीति जताई। रसिक अनन्यनि की निधि गाई ॥
सुनि प्रबोध वृन्दावन आये। जानि गुसाईं कछु अलसाये ॥
कौन - कौन सौं कीजै वाद। अन्तर परै भजन के स्वाद ॥
नमस्कार कहि पठयौ इनकौं। औसर पाये मिलिहैं तिनकौं ॥
ये प्रबोध जू बोध रसाल। लखि लिखि पठयौ पद्य रसाल ॥

मुग्धोमुंज महाटवीमुपगतो भ्रान्त्या हताशो भ्रमन्।
लब्ध्वाध्वा निजबन्धुनैव मरुता त्वद्‌गंध सम्बंधिना ॥
आयातो भवतोन्तिकं कथमपि प्रौढ़ाशया तर्षितो।
भृङ्गः कांगतिमेतु जीवनजने हंत त्वयोपेक्षितः ॥

यह अन्योक्ति भ्रमर भये आप। ये किये कमल पराग प्रताप ॥
रसिक पवन जस लै पहुँचायौ। तिन संग लग्यौ जग्यौ ढिग आयौ ॥
या कौं सुनत आप उठि आए। आश्रम उचित भेट-पट लाये ॥

जती कहौ आश्रम बरन साधे जन्म अनन्त।
'मलिन हियौ उज्ज्वल करो नीरस कौं रसवन्त ॥

नाभाजी की भक्तमाल और रसिक अनन्यमाल—

नाभाजी की भक्तमाल में, रसिक अनन्यमाल में वर्णित, इन राधावल्लभीय रसिकों का परिचय मिलता है। श्री भुवन जी (छप्पय ५२) श्री जैमल जी (छप्पय ५२) श्री हरीराम व्यास (छप्पय ६२) श्री यमुना बाई (छप्पय १०४) श्री नरवाहन जी (छप्पय १०५) श्री चतुर्भुजदास जी (छप्पय २३) श्री जसवन्त जी (छप्पय १५५) श्रीहरीदास तुलाधारजी (छप्पय १५६) श्रीखरगसैन जी (छप्पय १६१) श्री हरीदास तूँवर (छप्पय १७६) श्री गोविन्द-दास जी (छप्पय १७६ की प्रियादास जी की टीका में) और श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती (छप्पय १८१) ·

'भक्तमाल' के प्रकाशित संस्करणों में टिप्पणीकारों ने इन मे से कई को तो राधावल्लभीय रसिक लिखा है और कई को अज्ञान-वश अन्य सम्प्रदायों के अन्तर्गत मान लिया है। भगवतमुदित जी के

बाद के राधावल्लभीय इतिहास-लेखकों ने इन सब के चरित्र अपनी 'परचईयों' और 'रसिक गाथाओं' में लिखे हैं और इनमें से कईयों के बारे में, तो इन बाद के लोगों ने कुछ एसी बातें बतलाई हैं जो रसिक अनन्य माल में आने से, रह गई हैं या जिनका वहाँ संकेत मात्र मिलता है। ग्रन्थ बहुत बढ़ जाने के भय से हमने इन सब के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री उद्धृत नहीं की है। राधावल्लभीय रसिकों में जो वाणीकार हैं उनके सम्वन्ध में चाचा वृन्दावनदास जी कृत 'रसिक अनन्य परचावली' और गोविन्द अलि जी कृत 'रसिक अनन्य गाथा' से उद्धरण दे दिये हैं। वाणीकारों के अतिरिक्त हरीदास जी तूंवर और गोबिन्ददास जी से सम्बन्धित एक-एक पद चाचा वृन्दावनदास जी की 'भक्तप्रसाद बेली' से दिया है क्योंकि नाभाजी की भक्तमाल के वर्तमान टीकाकारों ने इन दोनों के सम्बन्ध में अनेक अटकलैं लगा रक्खी हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन-कार्य में विद्वान् राधावल्लभीय आचार्यों एवं साधु-सन्तों से मुझे बहुमूल्य सहायता मिली है। इनके सहृदयता पूर्ण सहयोग के बिना यह कार्य असम्भव था। मैं इन सब का अत्यन्त आभारी हूँ। मैं 'वेणु प्रकाशन' का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे कार्य को सप्रमाण, सयुक्तिक और सुव्यवस्थित बनाकर उसके प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया है। मैं आशा करता हूँ कि रसिक-साहित्य के अध्येताओं को इस संस्था से सदैव प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होते रहेंगे।

विनयावनत,

ललिताप्रसाद पुरोहित

वसन्त पञ्चमी, सं० २०१७
लश्कर (ग्वालियर)

प्रकाशक का निवेदन

इस ग्रन्थ के सम्पादक पं० ललिताप्रसाद जी पुरोहित मध्य-प्रदेश के एक उदीयमान निबन्ध लेखक हैं और आज कल 'म० प्र० सन्देश' में काम कर रहे हैं। वे कई वर्षों से राधावल्लभीय साहित्य की शोध में प्रवृत्त हैं। 'रसिक अनन्य माल' का सम्पादन उन्होंने बड़े परिश्रम और लगन के साथ किया है। मध्य प्रदेश राज्य साहित्य परिषद् ने उनके इस कार्य को एक हज़ार रुपये का पुरस्कार देकर सम्मानित किया है।

'वेणु प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित यह दूसरा ग्रन्थ है। आशा है कि हिन्दी साहित्यक 'भक्ति-काल' की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर इसके द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा और इस काल का समन्वित चित्र खड़ा करने में इससे सहायता मिलेगी। भक्त-चरित्रों के प्रेमियों के लिये तो यह ग्रन्थ पिछले तीन-सौ वर्षों से अत्यन्त रुचिकर बना हुआ है।

—प्रकाशक

चरित्र-वर्णन क्रम

प्रस्तावना—

राधावल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धान्त, ग्रन्थकार भगवत मुदित और ग्रन्थ रचना-काल, राधावल्लभ सम्प्रदाय में इतिहास-ग्रन्थों की परम्परा, ग्रन्थ-समीक्ष , भाषा और शैली, रसिक अनन्य माल की प्रतियाँ, नाभाजी की भक्तमाल और रसिक अनन्य माल। पृ० १—२२

परिशिष्ट—

श्रीहितहरिवंशाष्टक—श्री प्रबोधानन्द सरस्वती कृत

श्रीराधावल्लभो जयति
श्रीहित हरिवंशचन्द्रो जयति

श्री रसिक अनन्य माल

मंगलाचरण

प्रणवौं श्री चैतन्यवर, नित्यानन्द सरूप।
श्री हरिवंश प्रतापबल, बरनौं कथा अनूप॥
जा जाकौं जिहि जिहिं सुविधि, कृपा करी हरिवंश।
तजि असार वे सार गहि, भये हंस परसंश॥
चरण शरण हरिवंश की, आइ भये नर सिद्ध।
गई अविद्या कुमति सब, भई प्रेम की वृद्धि॥
जे आये हरिवंश पथ, सिद्ध भये जु अनन्य।
'भगवत' तिनकी 'परचई', बरनौं होहुं सुधन्य॥

श्री नर वाहन जी की परचई

श्री हरिवंश चरण शिर नाऊं, नर वाहन की कथा सुनाऊं।
श्री हरिवंश रसिकमणि रास। शरणागत की पुजवत आस।
नर वाहन भैगांऊ निवासी। वार पार में एक मवासी[1]।
जाकी आज्ञा कोउ न टारै। जो टारै तिहिं चढ़ि करि मारैं।
बस करि लियौ सकल ब्रज देश। तासौं डरपैं बड़े नरेश।
पातशाह के वचननि टारै। मन आवै तौ दगरौ[2] मारै।
जो कोऊ यापै चढ़ि आवै। अमल[3] न देई मार भजावै।
कबहुंक श्री वृन्दावन आयौ। श्री हितजू कौ दरशन पायौ।
चरचा होत नवल अरु आप। नर वाहन सब सुन्यौ अलाप[4]।
दरशन तें मति शुद्ध जु भई। श्रीहित जू की पद रज लई।
बचन सुनत उपज्यौ निरवेद[5]। पिछले कृत[6] कौ मान्यौ खेद।

---

१ लुटेरा। २ रास्ता। ३ कर। ४ बातचीत। ५ वैराग्य। ६ कर्म

कहन लग्यौ हों सरनहिं आयौ । अपुनौं सब बिरतान्त सुनायौ ।
अब प्रभु मोहि आपुनौं करौ । सिर कर धरौ कुमति मम हरौ ।
बिना कपट कौ बचन सुनाथौ । दिक्षा दे तब 'हित' अपनायौ ।।
बाट मारिबौ[1] तुरत छुड़ायौ । पूरण भाग्य उदै ह्वै आयौ ।।
इष्टधाम कौ भेद बतायौ । नर वाहन त्यों ही मन लायौ ।।
सेवा करन लग्यो मनलाई । करत भावना नाहिं अघाई ।।
आयो एक बड़ो व्यौपारी । लादैं नाव सौंज[2] बहु भारी ।।
देहि जगात[3] न सबसों अरै । तुपक जमूरन[4] सौं बहु लरै ।।
येहू मागन लगे जगात । वह मद-अंध सुनैं क्यौं बात ।।
हौ सरावगी धर्म बिरोधी । हरि भक्तनिसों लर्‌यौ किरोधी ।।
तुपक सात-सै वाके संग । दुहुं दिसि लागे लरन अभंग ।।
तीन लाख मुद्रा कौ वित्तनि । लाये लूटि निवेद्यौ भृत्तनि[5] ।।
वाकौ बाँधि गांव में लाये । तुपक हथ्‌यार सबै धरवाये ।।
कोठे मधि सौंज सब रखाई । गरैं तौंक पग बेरी नाई ।।
इतनौई धन अवर मगावै । तब यह ह्यां तें छूटनि पावै ।।
वाकौं बंधे बहुत दिन बीते । धन न मगावै मारौं जीते ।।
बैठि सभा में यह ठहराई । सो घर की चेरी सुनि पाई ।।
सुघर तरुण सुन्दर वह साह । देखन कौं चेरियै उमाह ।।
दासी के जिय दया जु आई । सुनी जु त्यौं ही ताहि सुनाई ।।
कात्हि तोहि मारैंगे राव । जीवन कौ नहिं कोउ उपाव ।।
तुहीं बचाइ ज्याइ जिय मेरौ । जन्म जन्म गुन मानौं तेरौ ।।
एक मंत्र हौं तोहि बताऊं । तातैं तेरौ प्राण बचाऊं ।।
अपुनौ दर्ब फेरि सब पैहै । आदर सौं अपनैं घर जैहै ।।
भाल तिलक धरि कंठीमाला । मो पै सुनि लै नाउं रसाला ।।
'(श्री) राधावल्लभ श्री हरिवंश' । सुमिरत कटैं पाप जम फंस ।।

---

१ रास्ते में लूटपाट करना । २ सामान । ३ चुंगी । ४ दूर मारक अस्त्र । ५ नौकर ।

पिछली राति पुकारि-पुकारि । कहियौ ऐसी भाति सुधारि ।
इतनी सुनत आपु चलि आवैं । बेरी काटि तोहि बतरावैं ।
तब कहियौ मैं उनकौ सेवक । भव तरिवै कों वेई खेवक ।।
यह सिखाइ रावर[1] में आई । लागी टहल न काहु जनाई ।।
भई प्रतीति बात मन मानी । पिछली रैनि वही धुनि ठानी ।।
धुनि सुनि उठि नरवाहन आयौ । गुरुभाई लखि पद लपटायौ ।।
महादीन ह्वै वचन सुनाये । बार-बार अपराध छिमाये ।।
जैनो जानि लूटि हम लीन्हौ । यह गुरु भेद न किनहूं चीन्हौ ।।
गुरु कौ नाम लेत मैं जानी । दासी नैं तब रीति बखानी ।।
मेटौ चूक जु मोते भई । कछु इच्छा प्रभु यों ही ठई[2] ।।
भोर होत स्नान कराये । उज्ज्वल पट भूषण पहिराये ।।
सिगरौ दर्ब फेरि कर दियौ । रती न मन में लालच कियौ ।।
श्री गुरु कौ विश्वास सुहायौ । सेवा करि चरणनि सिर नायौ ।।
करि दण्डवत् बिदा जब कीने । पहुंचावन सेवक बहु दीने ।।
देखि साह कैं भक्ति जु आई । सिष्य हौन कौं मति ललचाई ।।
जिनकौ छलसौं नाम उचारयौ । तानैं तन धन प्राण उबारयौ ।।
अबतौ उनकौ दरशन करौं । सर्बसु उनके आगे धरौं ।।
यों कहि बनिक वृन्दावन आयौ । पसरि दण्डवत् करि सिर नायौ ।।
अपनी सकल विवस्था कही । ताते आइ शरण मैं गही ।।
मरत जियौ सो तुम्हरी दया । यह सब धन तुमहीं तैं भया ।।
साठ बासनी[3] मुहरन भरी । लै हित जू के आगें धरी ।।
गुरुनि कही धन तुमहीं राखौ । हरि-हरिजन भजि कैं रस चाखौ ।।
श्रद्धा लखि कैं नाम सुनायौ । रीति धर्म सब कहि समुझायौ ।।
वह धन हाथन हूँ नहिं छियौ । यौं कहि बनिक बिदा कर दियौ ।।
ता पाछै नरवाहन आयौ । पूछैं तैं विरतान्त सुनायौ ।।
कृपा सु करकें निकट बुलायौ । गुरु भक्ता लखि हृदय लगायौ ।।

---

१ राजमहल । । २ रची । ३ थली ।

गुन समूह औगुन लघु चीन्हौ। हितजी ने फिरि सिच्छित कीन्हौ ॥
गुरु प्रसन्न ह्वै द्वै पद गाये। नरवाहन के भोग[1] लगाये ॥
सब सेवक में नरवाहन मुख। गुरु-धर्मी लखि होत परम सुख ॥

दोहा—'भगवत' नरवाहन रसिक, परम अनन्य उदार।
कपटी मुख गुरु नाम सुनि, अर्प्यो तन भंडार ॥

नरवाहन जी की छाप वाले दो पद इस प्रकार हैं—

१—मंजुल कल कुंज देश, राधा हरि विशद वेश,
राका नभ कुमुद बंधु, शरद जामिनी।
साँवल द्युति कनक अंग, विहरत मिलि एक संग,
नीरद मणि नील मध्य लसत दामिनी ॥१॥
अरुण पीत नव दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ युत शीत अनिल मन्द गामिनी।
किसलय दल रचित शैन, बोलत पिय चाटु बैन,
मान सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी ॥२॥
मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवि हार,
वेपथ युत नेति-नेति वदति भामिनी।
'नरवाहन' प्रभु सुकेलि, बहु विधि भर भरत झेलि,
सौरभ रस रूप नदी जगत पावनी ॥३॥ (हि०च०—११)

२—चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान,
रास रच्यौ श्याम तट कलिन्द नन्दिनी।
निर्तत युवती समूह राग रंग अति कुतूह,
बाजत रस मूल मुरलिका अनन्दिनी ॥१॥
वंशीबट निकट जहाँ, परम रवन भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय बहै वायु मन्दिनी।
जाती ईषद विकास, कानन अतिशय सुवास,
राका निशि शरद मास, विमल चन्दिनी ॥२॥
'नरबाहन' प्रभु निहार लोचन भरि घोष नारि,
नख सिख सौंदर्य काम दुख निकन्दनी।
विलसहु भुजग्रीव मेलि, भामिनि सुखसिंधु झेलि,
नव निकुंज श्याम केलि जगत वन्दिनी ॥३॥ (हि०च०—१२)

---

१ नरवाहन की छाप लगादी।

अथ श्री व्यास जी की परचई*

—प्रणवौं श्री चैतन्य पद, सकल सुखन की रासि।
व्यास चरित गायौं चहौं, होत हिये हुल्लास ॥
ंश चरण सिर नाऊं। तातें कथा व्यास की गाऊं।

काहू के आराध मच्छ, कच्छ, सूकर, नरहरि।
वामन, परसा–धरन, सेत-बन्धन जु सैलकर॥
एकनि के यह रीति नेम नवधा सौं लाये।
सुकुल सुमोखन सुदन अच्युत गोत्री जु लड़ाये॥
नवगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ भक्त इष्ट अति व्यास के॥

—श्री नाभादास कृत, भक्तमाल, छप्पय ६

भर किशोर दोउ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय।
प्रगट देखियत जगमगे, रसिक व्यास के हीय॥४१॥
कहनी करनी करि गयौ, एकु व्यास इहि काल।
लोक वेद तजि कै भजे, श्री राधावल्लभलाल॥४२॥
प्रेम मगन नहिं गन्यों कछु, वरना वरन विचार।
सबनि मध्य पायौ प्रकट, लै प्रसाद रस सार॥४३॥

—श्रीहित ध्रुवदासकृत, भक्तमामावा

कोटि प्रान ते अधिक नाम श्री राधावल्लभ।
निश दिन सो उच्चरयो रास रस निरख्यौ सुल्लभ॥
विविध भांति मति कुशल साधु-सेवा सुख लीनौ।
प्रगटे भक्त स्वरूप वास वन सब तजि कीनौ॥
बरसत पियूष रसिकन सभा पद-प्रबन्ध रसनिधि कियौ।
जग के असार परपंच तजि श्री व्यास भक्ति अमृत पियौ॥५॥

—श्री चाचा हितबृन्दावनदासकृत, रसिक अनन्य परचाव

सुकुल सुमोरवन सुवन ओड़छो तजि वन आये,
'हित' पद पंकज परसि व्यास दम्पति दुलराये॥
सन्तनि कौ उत्कर्ष इष्ट सम भाव विचारैं।
कहनि रहनि आरूढ़ जुगल जोरी सिरधारैं॥
गाथा विमल अगाध सार सैाखनि, कौ गायौ।
सर्वसु महाप्रसाद सीथ सुपचनि तैं पायौ॥५१॥

—श्री गोविन्दअलिकृत, अनन्य रसिक गा

सुकुल सुमोखन बड़े कुलीन । राजा परजा सबै अधीन
तिनके पुत्र व्यास कुलवंत । अति गंभीर कोउ लहैं[1] न अंत
अर्थ पुराण सकल समुझावै । संशय कोऊ रहन न पावै
ऊंचौ मन गुरु करन विचारैं । ऐसौ करौं जु पार उतारैं
कबहूं कै रैदास सुहावै । कबहूं मत कबीर कौ भावै
कबहूँ पीपा पै मन राखैं । कबहूं श्री जय देवहि भाखै
कबहूं नामदेव सुधि आवै । कबहूं रंका बंकहि गावै
कबहूं रामानन्द गुसाईं । परलोक गये तिनकी सुधिआई
कबहूं वृन्दावन गुन गावैं । रसिक भक्तिमें मन ललचावै
ऐसिहि करत ठोक नहिं करी । बरस बयालिस आयसु टरी[2]
इकदिन नवल वैरागी आये । व्यास मिले अति ही हरसाये
प्रीति सहित अति आदर कीनौं । राखे नवल जान नहिं दीनौं
सहज नवल ने यह पद गायौ । सुनत व्यास कौ मन हुलसायौ
पद--(आजु अति राजत दम्पति भोर)❀
यह पद व्यास विचारत भये । रोम-रोम तनमय ह्वै गये
जिनकौ हियौ सिरावत[3] जोरी । विधि-निषेध शृंखल दृढ़ तोरी

---

१ पावें । व्यतीत हुई । ३, शीतल करती है ।

❀ आजु अति राजत दम्पति भोर ।
सुरत रंग के रस में भीने नागरि नवल किशोर ।।
अंशनि परभुज दिये विलोकत इन्दुबदन विवि ओर ।
करत पान रस मत्त परस्पर लोचन तृषित चकोर ।।
छूटी लटनि लाल मन करष्यौ ये याके चित चोर ।
परिरम्भन चुम्बन मिलि गावत सुर मंदर कलघोर ।।
पग डगमगत चलत बन बिहरत रुचिर कुंज घनखोर ।
(जै श्री) हित हरिवंश लाल-ललना मिलि हियौ सिरावत मोर

जोग जग्य जप तप व्रत जितने । शुद्ध भक्ति बल गनत न तितने ।।
ऐसी सुनी नवल मुख रीति । व्यास करी 'हित' गुरुसौं प्रीति ।।

दो०—'भगवत' दुख बिसरयौ सुनत, नवल वचन सुख सोर[1] ।
संसय सूलरु भ्रम नस्यौ, निर्मल भयौ शरीर ।।

'(श्री) राधावल्लभ' इष्ट बताये । नित्य विहार के भेद सुनाये ।।
चलि वृन्दावन दर्शन कीजे । श्री'हरिवंशहिं' कौं गुरु कीजे ।।
कातिक लगत वृन्दावन आये । नवल रसिक संग लिये सुहाये ।।
मन्दिर मांझ गुसाँई पाये । दरशन करिकैं नैन सिराये ।।
हितजू प्रभु पाकहिं[2] विस्तरहिं । व्यास कहहिं हम चरचा करहिं ।।
तबहि टोकनी धरी उतार । अग्नि बुझाई लगी न बार ।।
व्यास कही दोऊ किन कीजे । मुखसौं चरचा करि सुख दीजे ।।
करिबौ-धरिबौ करकौ धर्म । कहिबौ-सुनिबौ मुख श्रुति[3] मर्म ।।
तब हरिवंश गुसाँई बोले । सब संदेह हिये के खोले ।।
ताही छिन पद एक सुनायौ । सुनत व्यासकौ मन हुलसायौ ।।

पद—(यह जु एक मन वहुत ठौर करि कहि कौनें सचु पायौ)*

यह पद सुनत प्रश्न जे हिय कौ । प्राकृत-अप्राकृत प्रभु जिय कौ ।।
काल ग्रसित प्रपंच कौ अंत । प्रभु के भक्त जु नित्य अनंत ।।
यह उपदेश व्यास कौं भयौ । दोउकरजोरि पगन सिरनयौ[4] ।।

---

१ सुख उत्पन्न करने वाला । २ रसोई । ३ कान । ४ झुकाया ।

पूर्ण पद इस प्रकार है—

* यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौने सचु पायौ ।
जहँ-तहँ बिपति जार जुवती लौं प्रगट पिंगला गायौ ।।
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठि परत कौन पै धायौ ।
कहि धौं कौन अंक पर राखै जो गनिका सुत जायौ ।।
(जैश्री) हित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल-व्याल कौ खायौ ।
यह जिय जानि श्याम-श्यामा-पद-कमल-संगी सिर नायौ ।।
(हि० च० ५६)

शिक्षा दै कैं दिक्षा दीजे । अब तौ मोहि आपुनौं कीजे ।।
श्रद्धा लखि निजु-मंत्र सुनायौ । भयौ व्यास के मन कौ भायौ ।।
वाद[1] हेत पोथी ही जोरीं । ते अब सब जमुना में बोरीं ।।
जुगल-उपासन अरु रस-रीति । कीनी कुंज-रसिक सौं प्रीति ।।
रास-विलास महोत्सव पागे । श्री गुरु-साधुन सेवन लागे ।।
तिलक दाम[2] के हाथ विकाये । चरणोदक प्रसाद नित पाये ।।
श्री किशोर जू[3] प्रगट जु कीनें । गादी प्रिया थापि सुख लीनें ।।
हित-पद्धति सौं प्रभु पधराये । राग-भोग सेवन गुन गाये ।।
नित दूलह-दुलहिन दुलराये । हित हरिवंश कृपा तें पाये ।।
प्रेम मगन सिंगार बनावैं । रूप अनूपम पार न पावैं ।।
तोरि जनेऊ नूपुर गुह्यौ । रास-सभा में आनँद लह्यौ ।।
बहुत बरस लौं ऐसेहि रहे । 'श्री राधावल्लभ' निजकर गहे ।।
जिन प्रसाद यह संपति पाई । पद करि स्तुति गाइ सुनाई ।।

पद—(नमो नमो जय श्री हरिवंश)❀

जनम पाछिले सिगरे सूझे । (श्री)राधावल्लभ सब पर बूझे ।।

पद—(राधावल्लभ मेरौ प्यारौ)*

बहुत जनम धरि बहुमत देखे । गुरु दर्शाये सब घटि लेखे ।।

---

१ शास्त्रार्थ । २ कंठी । ३ श्री जुगलकिशोर जी; श्रीव्यास जी के उपास्य विग्रह ।

पूर्ण पद इस प्रकार हैं—

❀ नमो नमो जय श्री हरिवंश ।
रसिक अनन्य वेणु कुल मण्डन लीला मानसरोवर हंस ।।
(नमो) जयति वृन्दावन सहज माधुरी रास-विलास प्रशंस ।
आगम-निगम अगोचर राधे चरण सरोज 'व्यास' अवतंस ।।

* राधावल्लभ मेरौ प्यारौ ।
सर्वोपरि सबहिन कौ ठाकुर सब सुखदानि हमारौ ।।
व्रज-वृन्दावन नाइक, सेवा लाइक श्याम उजारौ ।
प्रीति रीति पर्ग चानै जानै रसिक अनन्यनि कौ रखवारौ ।।

बिनु छिन न कहूँ सुख पायो)❀

स लौं ऐसे रहे । श्री हरिवंश विरह दुख सहे
तिन पाछै पायौ । सो दुख पदनि करि गाइ सुनायौ

रस रसिकन कौ आधार)❀

म कमल दल लोचन दुख मोचन नैननि कौ तारौ ।
तारी सब अवतारन कौ महतारी-महतारौ ॥
तिवन्त काम गोपिन को गऊ-गोप कौ गारौ ।
स-दास' कौ प्रान जीवन-धन छिन न हृदै तें टारौं ॥

प्रकार हैं—

बिनु छिन न कहूँ सुख पायौ ।
, सुख, सम्पति, विपति भोगवत, स्वर्ग-नर्क फिरि आयौ ॥
चतुर्दश बहुविधि भटक्यौ, स्वारथ हरि बिसरायौ ।
ट गाय ब्राह्मन मारे कौ ताप-पाप उपजायौ ॥
हुँक श्वपच शरीर धर्यौ मैं चोरी के बल उदर बढ़ायौ ।
हुँक विद्या-वाद स्वाद लगि ब्राह्मन ह्वै पुजवायौ ॥
हुँक रङ्क निशङ्क भयौ घर-घर फिरि जूठौ खायौ ।
हुँक सिंहासन पर बैठ्यौ, छत्र चौंर ढ़ुरवायौ ॥
हुँक कञ्चन कामिनि लगि रन दूलह विरद बुलायौ ।
हुँक विषयी विषयनि कारन घर तजि मूँड़ मुड़ायौ ॥
नाना धर्म-कर्म करि जनम-जनम डहकायौ ।
कै रसिक अनन्यनि व्यासहि राधा-रवन दिखायौ ॥

रस रसिकनिकौ आधार ।
तु हरिवंशहि सरस रीति कौ कापै चलि है भार ॥
राधा दुलरावै गावै वचन सुनावै चार ।
रावन की सहज माधुरी कहि है कौन उदार ॥
चरना अब कापै ह्वै है निरस भयौ संसार ।
अभाग्य अनन्य सभा कौ उठिगो ठाठ सिंगार ॥
न बिनु दिन-छिन सत-युग बीतत सहज रूप आगार ।
स एक कुल कुमुद बन्धु बिनु उड़गन जूँठौ थार ॥

पद—(पैन छवि कोऊ कवि न बखानै)✽

किशोरदास व्यास सुत बड़े। ते आये वृन्दावन मढ़े ॥
लखि स्वामी हरिदास सिहाये। तिनहीं के ये शिष्य कराये ॥
इहिमत ये स्वामी कौं मानैं। कुंजबिहारी सों हित ठानैं ॥
श्री श्यामा की आज्ञा आई। व्यास सखी निजु महल बुलाई ॥
रूप-माधुरी नैनन अरी। कुंज-महल चलिवे मति धरी ॥
संत-महंतन कों कर जोर। तनु तजि निरखत जुगलकिशोर ॥

दोहा—श्री राधावल्लभ इष्ट गुरु, श्री हरिवंश सहाइ।
व्यास पदनि तें जानियौ, हौं कहा कहौं बनाइ ॥
गुरु कौ मान्यौ शिष्य नहीं, शिष्य मानै गुरु सोइ।
पद साखी करि व्यास नै, प्रगट करी रस भोइ[1] ॥
हित हरिवंश प्रताप तैं, पाई जीवन-मूरि।
'भगवत' कहि लिखि सकौं नहिं, रहे विश्व में पूरि ॥

---

१ डुबाकर।

पूर्ण पद इस प्रकार है—

✽ पैन छवि कोऊ कवि न बखानै।
जीभ कुकात प्रीति कहिवे कों व्याकुल होत अपानै ॥
अति अगाध रस-सिन्धु माधुरी वेई पै कहि जानै।
ताकौ वार-पार नहिं पावत विधि,शिव,शेष,धरत श्रुति ध्यानै ॥
कोटि-कोटि जयदेव सरीखे कहत सुनत न अघानै।
'व्यास' आस मन की को पुजवै श्री हरिवंश समानै ॥

अथ श्रीछबीलदास जी की परचई

दोहा—पान-सेदगी[1] करत हौं, बालकपन तें हेत।
सो आयो प्रभु मिलन कौं, वृन्दावन रस खेत ॥

देवन एक तमोरी[2] रहतौ। पान बंधान भोग निर्बहतौ[3] ॥
ढोली पान सुदेश बनावै। नित-प्रति प्रभुहित लै पहुँचावै ॥
श्री हरिवंश वृन्दावन आये। उन बिछुरन ते बहु दुख पाये ॥
रहि न सक्यौ वृन्दावन आयौ। श्री हितजू कौ दरशन पायौ ॥
आप मिले बहु आदर दीनो। जोग जुगल देखन कौ कीनो ॥
जन संग दै वन मांहि पठायौ। रास-विलास ताहि दरसायौ ॥
छक्यो छबीलदास छवि देख। परयौ मूर्छित उर जुग बेख[4] ॥
देखत लोग बहुत घिर आये। ज्यों-त्यों करि हितजू पै लाये ॥
पूछी आप प्रगट कछु रहिहौ। किधौं निकुंज-केलि सुख लहिहौ ॥
उन कर जोरि पगन सिर दीनो। तनहि छांड़ि दम्पति रंग भीनो ॥

दोहा—'भगवत' महतनि सौं करौ, काहू भांति सनेह।
प्रभुहि मिलावें पलक में, करि अप्राकृत देह[5] ॥

अथ श्री नाहरमल जी की परचई

दोहा—नाहरमल कायथ रसिक, देवन[6] तें ब्रजवास।
हित हरिवंश प्रताप तें, निरखे रास-विलास ॥

नाहरमल कायथ कुल जानौ। वृन्दावन बसतौ नहिं छानौ[7] ॥
श्री हरिवंश किये गुरु पूरे। भये अनन्य अशुभ-शुभ चूरे ॥

१ पान की सेवा। २ तम्बोली। ३ नियम पालन करते थे। ४ श्यामा-श्याम का रूप।
५ सखी स्वरूप। ६ देववन। ७ गुप्त।

श्री राधावल्लभ सौं हित साँचौ । जगत प्रपंच कृपा तें बाँचौ ॥
हानि-लाभ गृह-उद्यम जितने । प्रभु के मानि करै सब तितने ॥
एक दिवस गुर दरसन काजै । आयौ वन में सहित समाजै ॥
व्रजवासिन के बालक जहाँ । खेलत हैं हितजू मिलि तहाँ ॥
याहि देख प्रभु तीर-कमान । लरकहिं देइ कियौ सनमान ॥
नाहरमल्ल महा दुख भीनौं । मैं लीला में अंतर कीनौं ॥
पुनि गुरु मानसरोवर गये । तहाँ कौतुक दिखराये नये ॥
स्नान करत देखी सहचरी । गुन छवि रूप रंग-रस भरी ॥
निकसि सरोवर बाहर आये । श्री हरिवंश अकेले पाये ॥
एसेंहि और बेर फिरि आयौ । वन मधि गुरु कौ दरसन पायौ ॥
गौर वदन सुंदर पट पहिरें । अति सुसरूप उठत छवि-लहरें ॥
प्रभु की टहल आप सब करें । लै-लै ईंधन पट में धरें ॥
नाहरमल कौं भली न लागी । विनती करनि लग्यौ अनुरागी ॥
प्रभु जू धीमर आज्ञा पावै । नित बहँगी ईंधन पहुँचावै ॥
सुनत गुसाईं जी बहु दूखे । तासौं बचन कहे अति रूखे ॥
वर दै स्याम छुड़ावत गोहन[1] । काहू भक्ति देत नहिं मोहन ॥
कोटि जतन संतन सँग पाई । सो तू छुड़ावन आयौ भाई ॥
महा रजोगुण लै तू आवै । मेरौ कृत धीमरहिं बतावै ॥
यह तैं करयौं बड़ौ अपराध । मैं तू जान्यौ बड़ौ असाधु ॥
ऐसैं वाकौ कीनौं त्याग । उनहूँ अपनौं गिन्यौ अभाग ॥
भोजन-भोग सबै तजि दीनौं । गुरु प्रसन्न करिबौ पन[2] लीनौं ॥
श्यामा जू हित जू सौं कही । नाहरमल निरदूषित[3] सही ॥
सुपने में कहि भेद जतायौ । हितजू लिखि सुठि पत्र पठायौ ॥
ता पत्री में अद्भुत रीति । गुरु सिखकी लखि परै न प्रीति ॥

---

१ पीछा । २ प्रतिज्ञा । ३ निर्दोष ।

दोहा—जोरी जू तब कृपा तें, बरसत रास-विलास।
कोटि-कोटि अपराध में, छमे सहित उल्लास॥

एसै शिष्यहि लिखी गुसाईं। आइ प्रसाद जूँठ लै पाईं॥
जुगल-भावना में नित रहैं। काहू के गुन-दोष न चहैं॥
संतनि-सेवो लखि सब हरखैं। रसिकनि के तौ मन आकरखैं॥

दोहा—श्री हरिवंश कृपाल ह्वै, रीझि दियौ निज भौंन[1]।
'भगवत' नाहरमल्ल सम, गुरु-भक्ता कहि कौंन॥

अथ श्री विट्ठलदास जी की परचई

दोहा—श्री हरिवंश प्रताप बल, धर्म धीर सम्पन्य।
इनही के भ्राता रसिक, विठ्ठलदास अनन्य॥

विठ्ठलदास उदार भये जग। गह्यौ सुदृढ़ श्री गुरुवर कौ मग॥
श्री वृन्दावन वास विचारयौ। गुरु की जूँठ दरस पन धारयौ॥
बहुत काल बीते जब वेसे। सेवत इष्टहि गुरु मत जैसे॥
प्रभु इच्छा अनयासा भई। पातसाह खिजमत[2] लिखि दई॥
जूनागढ़ कौ सूबा जानि। ताकौ इनहिं कियौ परधान॥
सोई लिख्यौ लै गुरुहिं सुनायौ। प्रभु इच्छा लखि हितजू दृढ़ायौ॥
अनायास आवै घर वैसे। प्रभु कौ मानि करै कृत[3] जैसे॥
तब हितजी कौ चित्र लिखायौ। सेवा नाम[4] सहित पधरायौ॥
सदाचार सौं पाक रसोई। करि निवेद[5] पावै नित सोई॥
अरु निज जूठनि गुरु की पावै। जतन अनेकनि सौं जु मगावै॥
कबहुँक नृप द्वारिका पधारयौ। श्री रनछोर दरस जु विचारयौ॥
तब लसकर[6] के लोग जु जितने। दरस-परस करि आये तितने॥

---

१ अपना घर (निकुञ्ज)। २ नौकरी। ३ कर्म। ४ नामसेवा। ५ भोग लगाकर। ६ सेना।

विट्ठल दरसन कौं नहिं गये। ते चवाब[1] सब घर-घर भये॥
बहुतनि नृप कौं जाइ सुनाई। सो नृपहू कौं नहीं सुहाई॥
भरी सभा में विट्ठल आने। क्यौं तुम यह ठाकुर नहिं माने॥
सब हिन्दू दरसन करि आये। न्यारौ मत तुम कहाँ चलाये॥
तब यह बोले जो मम इष्ट। ताकौ दरसन परस अभिष्ट॥
गुरु हरिवंश धाम वृन्दावन। द्विभुज[2] राधिकावल्लभ सौं पन॥
मुरलीधर रस रास-विलास। रोम-रोम रमि रह्यौ प्रकास॥
तन-मन बसें साँवरे गौर। नहीं चतुर्भुज[3] कौं उर ठौर॥
तन-मन वन गुरु इष्ट बखान्यौं। तबतौ नृप मन अतिहि रिसान्यौ॥
वसन खुलाये झूँठे मानें। हम हूँ देखें अरु सब जानें॥
द्रुम बेली फल पल्लव नये। रोम-रोम प्रति देखत भये॥
ताल-मृदँग नूपुर धुनि बजै। मंद मधुर मुरली मृदु गजै[4]॥
तब तौ अचिरज सबहिन मान्यौ। राजा आइ चरण लपटान्यौ॥
कहनि लग्यौ तुम सम नहिं कोई। यह अनन्यता सुनी न जोई॥
यह अपराध छमा करौ मेरौ। कीजे मोहि आपुनौ चेरौ॥
इनहूँ नम्र जानि दियौ मान। कहि मृदु वचन हर्यौ अज्ञान॥
तब तैं नृप नित करत सनमान। अतिसय सुनें हृदय गुरु ज्ञान॥
अपनें घर नहिं बोलि पठावै। आपहि चलि दरसन कौं आवै॥
स्वारथ परमारथ के काम। इनही के बस किये धनधाम॥
और सुनौं विट्ठल की रीति। श्री गुरु सौं अति साँची प्रीति॥
जबहिं सुनी गुरु धाम[5] पधारे। तन तजि आइ मिले वन प्यारे॥

दोहा—निष्ठा इष्टरु धाम की, गुरुमत के अनुसार।
भगवत विट्ठलदास नें, प्रण पाल्यौ निरधार॥

---

१ निन्दा पूर्ण चर्चा। २ दो भुजावाले। ३ चार भुजावाले रणछोड़ जी। ४ गर्जना करती थी। ५ निकुञ्जधाम।

अथ श्री मोहनदास जी की परचई

दोहा—अब लघु भ्राता तीसरे, मोहनदास रसज्ञ।
श्री हरिवंश प्रताप तें, भये सबै सर्वज्ञ ॥

और तीसरे भ्राता इनके। मोहनदास सुने गुन जिनके ॥
श्री गुरु धर्म भलौ निर्बह्यौ। जगत क्रिया तन तनक न चह्यौ ॥
सदाचार सौं इष्ट अराध्यौ। रसिक अनन्यनि सौं मन बाँध्यौ ॥
ज्यौं गुरु-रीति सदा चलि आई। श्रद्धा सहित जु करी सबाई ॥
सुत-दारादि देह के नाते। ते सब मन करि कीन्हें हाँते[1] ॥
इष्ट-भजन में होइ सहाई। ता बिनु कोऊ नहीं सुहाई ॥
सुनतहिं श्री गुरु कौ निर्वान[2]। ताही छिन इन तजे सुप्रान ॥
प्रान तजे विट्ठल जू जैसे। गुरु-वियोग त्याग्यौ तन वैसे ॥

दोहा—तीनौं भाई रसिकवर, हितजू कृपा प्रधान।
तिनके गुन 'भगवत' बहुत, क्यौं करि सकै बखान ॥

अथ श्री नवलदास जी की परचई

दोहा—अब श्रीहित हरिवंश के, शिष्य नवल हैं जानि।
धूसर कुल पावन कियौ, तिनकौ करौं बखानि ॥

रैबारी मधि घर हौ जिनिकौ। कथा-कीरतन में मन तिनिकौ ॥
साधुनि की सेवा सुठि करै। महा नम्र सब कौ मनु हरै ॥
सत् संगत वृन्दावन आये। श्री हरिवंश मिले सुख पाये ॥
बहुत दिवस लौं सेवा कीनी। गुरु हू शिष्य परीक्षा लीनी ॥
तब निजु-मंत्र सुनायौ जाकौं। धर्म अनन्य बतायौ ताकौं ॥
महा विरक्त जुगल रस भीनौं। यथा लाभ संतोष सुलीनौं ॥

---

१ अलग। २ निकुंज गमन।

श्री राधावल्लभ के गुन गावै। रसिक जननि के चित्त चुरावै ॥
बाहिर-भीतर प्रभु कौं देखै। हानि-लाभ सुख-दुख सम लेखै ॥
जहाँ-तहाँ फिरै नवल कौ भाव। गुन ही गुन गहिवे कौ चाव ॥
क्षुधा-तृषा के बस नहिं होई। अति अगाध हिय लखै न कोई ॥
गुरु हरि साधुन सुखद सुभाइ[१]। काल भजन बिनु वृथा न जाइ ॥
और सुनौं कौतिक इक नीकौ। परचै भयौ नवल जन जीकौ ॥
शेरशाह जब गढ़ करि मरचौ। हेमू राज कछुक दिन करचौ ॥
बहुरि हुमायूँ कौ भयौ राज। हेमू मारचौ बैठ्यौ गाज ॥
शाह कही बनियन कौं ल्यावहु। मारौ सबन जहाँ लगि पावहु ॥
अहदी[२] गये पकरि सब ल्याये। आनि झरोखा तरैं दिखाये ॥
तब वजीर नैं विनती कीनी। चूक सबै धूसर सिर दीनी ॥
बनिक छाँड़ तब धूसर पकरे। ढूँढ़ि-ढूँढ़ि बेड़िन में जकरे ॥
हेमू कुल पकरनि कौं धाये। ह्वैसत रैबारी तैं ल्याये ॥
बंद किये बहु त्रास दिखाये। दुरे-छिपे ते तिनहु बताये ॥
धूसर तौ अब कोऊ नाहीं। एक रह्यौ वृन्दावन माहीं ॥
तब वृन्दावन अहदी आये। नवलदास कौं लै पहुँचाये ॥
पातशाह नैं बूझी बात। कहि रे नवल आपुनी जात ॥
नवल कह्यौ जिन पैदा किये। उनि अब हम अपनें करि लिये॥
जाति न कोई भये अतीत[३]। हरिभक्तन की औरइ रीत ॥
शाह कही बाँधौं अब तोहि। न्यारी रीति दिखावत मोहि ॥

दोहा—जो कोउ जरै जंजीर तन, तौ तोरूँ सत सात[४]।
प्रेम तन्तु अटक्यौ नवल, मटक्यौ तनक न जात ॥

शाह न समुझ्यौ नवल जो कह्यौ। अर्थ वजीर कहे तैं लह्यौ ॥
सुनत साह जंजीर मँगाई। पग अरु हाथ गुदी[५] में नाई ॥

---

१ स्वभाव। २ गिरफ्तार करने वाले। ३ जाति से परे। ४ सात सौ। ५ गर्दन।

बाँधि जजीर दियौ बँधसाला[१] । मारि कपाट लगायौ ताला ।।
जल अरु अन्न जानि नहिं पावै । इहाँ जु नवल श्याम गुन गावै ।।
गुरु-पद इष्टधाम चित लायौ । देह सहित वृन्दावन आयौ ।।
तीन दिना पाछें सुधि लीन्हीं । सब जंजीर कोठे मधि चीन्हीं[२] ।।
फिरि कैं अहदी शाह पठाये । नवल बहुरि वृन्दावन पाये ।।
अहदी कही जु शाह बुलाये । परमारथ हित नवल जु आये ।।
शाह नवल कौं देखत भयौ । महा तेज लखि आसन दयौ ।।
करामात तुम प्रगट दिखाई । तातैं सो मन दया जु आई ।।
आज्ञा करौ सोई परमान[३] । धूसर क्यौं रोके बिन जान ।।
जो कोई करै सोई फल पावै । क्यौं इनकौं तू वृथा सतावै ।।
एसौ उपदेस्यौ बहु ज्ञान । धूसर सकल छुटाये आन ।।
अपने-अपने घरनि पठाये । तब तें धूसर भक्त कहाये ।।
शाह नवल कौ आदर कीनौं । ढिग बैठाइ प्रेम-रस भीनौं ।।
द्रव्य बहुत जो भैंट मँगायौ । नवल देखि कैं हाथ न लायौ ।।
यह तौ काज तुम्हारे आवै । हमकौं मदनगुपालहि भावै ।।
परमेश्वर सौं काज हमारौ । कहा लै कीजै द्रव्य तुम्हारौ ।।
कारी कमरी देह सुहावै । उदर समान प्रभू पहुँचावै ।।
कछु अंगीकृत इहाँ कौ करौ । शाह कही यह चित मत धरौ ।।
स्याम कामरी शाह मँगाई । नवलहिं अपने हाथ उढ़ाई ।।
विदा भये वृन्दावन आये । इहि विधि धूसर सब छुटवाये ।।
साधू मिलैं साधु ह्वै जाई । साधु मिलैं सब साध[४] पुजाई ।।
साधु मिलैं परमारथ होई । साधु न समुझैं स्वारथ कोई ।।
साधु सदा बोलत मृदु बानी । साधुन की गति साधू जानी ।।

---

१ जेल। पहचानलीं, देखलीं। ३ स्वीकार। ४ अभिलाषा।

दोहा—पर दुख-दुखी पर सुख-सुखी, 'भगवत' हरिजन सोइ।
राधावल्लभ तिनहि कौं सदा सहायक होइ॥

अथ श्री हरीदास जी तुलाधार की परचई

दोहा—अब श्रीहित हरिवंश के, कृपापात्र निजभृत्य[1]।
हरीदास तुलाधार शुचि[2] सुनि लै तिनको कृत्य॥

श्री राधावल्लभ के हितकारी। हरीदास गुरु सेवक भारी॥
अच्युत कुल[3] सौं अति अनुराग। दंपति भजन रह्यौ मन पाग॥
साधुन सेवा सर्वसु जानैं। देह-गेह छिन भंगुर मानैं॥
कथा-कीरतन संतत भावै। भजनी सत्-संगत मिलि गावै॥
शील सुभाउ उदार महाई। रास-विलास उपास सदाई॥
वचननि मधुर भजन-रस बरखै। देखत सुनत रसिक मन हरखै॥
सारा सार विवेकी पूरौ। सुखद सुघर रु छमी[4] जिमि सूरौ॥
नखसिख सुंदर वदन प्रसन्न। काम,क्रोध,मद, लोभ न अन्य॥
तिय सुत घर सौं ममता मोरी। लोक-वेद कुल-संखल[5] तोरी॥
आयें हर्ष न शोक गये कौ। मान अमान समान भये कौ॥
हित सौं अपने इष्टहिं अरचै। द्रव्य बहुत उत्सव में खरचै॥
भाव-भक्ति की जुक्तिहि जानैं। रसिक अनन्यहिं सर्वसु मानैं॥
माला तिलक प्रसाद निरंतर। सेवत शुद्ध बाह्य-अभिअंतर[6]॥
दया-धर्म करुणा की रासि। गुरु भागौत वचन विश्वास॥
स्वारथ की कछु मन नहिं लावै। परमारथहित सुनि उठि धावै॥

दोहा—'भगवत' साधु परार्थी[7], परमारथ की देह।
सिवरु दधीच समान कलि, यामैं नहिं संदेह॥

---

१ शिष्य। २ पवित्र। ३ विरक्त कुल। ४ क्षमाशील। ५ बंधन। ६ बाहर-भीतर। ७ परोपकारी।

बरसि पाँच घटि सौके भये । साधुनि के दरसन कौं गये ॥
वन में हरीदास जू हेरें[1] । सिंघ जु एक गऊ कौं घेरें ॥
देखत इनकौं उपजी दया । गऊ छुड़ावन कौं ढिंग गया ॥
नृसिंह मानिकै पकरे पाँइ । छाँड़ौ गऊ जगत की माँइ ॥
गौ छाँड़ौ मोहि भक्षरण करौ । प्रभु यापै जु दया विस्तरौ ॥
तब सिंह रूप बोले भगवान । दैव दई मोहि भूँखौ जान ॥
याकौं तजौं न तौकों खाऊँ । वृद्ध देह सौं मैं न अघाऊँ ॥
तब यह बोल्यौ सुत लै आऊँ । उदर पूरण तुम्हैं कराऊँ ॥
बाँह वचन[2] दै गयौ छुड़ाई । राति बीच की अवधि दृढ़ाई[3] ॥
वाहि वचन करि घर कौं धायौ । तिय सुत सौं वृत्तांत सुनायौ ॥
पिता वचन सुनि सुत सुखपायौ । मोहि ठिकाने भलौ लगायौ ॥
मेरौ जन्म सुफल करवावहु । नस्वर वपु[4] परकाज लगावहु ॥
भोर होत ही पिता जगायौ । चलौ तात कीजे मन भायौ ॥
अपनौं वचन सत्य करि लीजे । मोहि समर्पन सिंहहिं कीजे ॥
सुत लै संग पिता उठि धायौ । वन में सिंह सोवतौ पायौ ॥
पहर एक लौं सोयौ नाहर । तबलौं दोउ ठाड़े तिहि ठाहर[5] ॥
उठि कैं सिंह बहुत डरपायौ । गर्ज घोर बहु शब्द सुनायौ ॥
दोऊ सूरवीर मन धीर । काल-व्याल भय-रहित शरीर ॥
बहुत उपाय सिंह करि हारचौ । डरे न प्रभु सर्वत्र विचारचौ ॥
जे देही धरि लोभ करांहीं । काल-व्याल तिनहीं कौं खाहीं ॥
ये दोउ परम धर्म में धीर । उज्ज्वल मन ज्यौं गंगा,नीर ॥
जिनकी प्रभु सौं रति मति[6] होई । तिनहिं काल कौ डर नहि कोई ॥
ये सतवादी हरि के दास । इनकैं चरन-कमल की आस ॥
भये प्रसन्न हरि दरसन दीनौं । नाहर रूप चतुर्भुज कीनौं ॥

१ देखें । २ सत्यप्रतिज्ञा । ३ रातभर का समय माँग लिया । ४ शरीर । ५ स्थान । ६ प्रेम बुद्धि ।

शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजै । कौस्तुभ मनि पीताम्बर छाजै ।।
भृगुपद गरुड़ासन शुचि सोहै । माथे मुकुट मुनिनि मन मोहै ।।
कानन कुंडल नैन विशाला । उर राजत वैजंती माला ।।
नख-सिख सुंदर स्याम शरीर । कटि किंकिन पद मणि मंजीर ।।
मुक्तामाल पदक शुभ कंठ । सदा विराजत जे वैकुंठ ।।
इनकौं दुभुज रूप जुग भावै । श्री वृन्दावनचंद सुहावै ।।
एतौ जुगल स्वरूप उपासी । इष्ट धाम में दृढ़ विस्वासी ।।
जे स्वरूप श्री गुरुन बताये । पुनि वैसेई दरसन पाये ।।
मुरलीधरन त्रिभंगी रूप । जगमग भूषन बसन अनूप ।।
गौर वरन प्यारी ढ़िग सोहै । कोटि रमा रति कौ मन मोहै ।।
तब तौ दौरि चरण में परे । आनँद नीर दृगनि सौं ढरे ।।
जुग मुख शशि[1] अवलोकत भये । रीझे प्रभु भाये वर दये ।।
भक्ति अनन्य करौ निहकाम । फिर एहौ वृन्दावन धाम ।।
कबहुँक प्रभु इच्छा करि प्रेरे । जगन्नाथ राय जू हेरे[2] ।।
अपने इष्टधाम की संपति । देखत भये अंस उर दंपति ।।
सेवा संग हुती जो नित की । तासौं एक वृत्ति जो चित की ।।
सदाचार सौं भोग लगावै । ता प्रसाद बिन और न भावै ।।
एसें पुरुषोत्तम के धाम । सेवत दृढ़ मत श्यामा-श्याम ।।
पंडा अटका[3] लै-लै आवैं । सिर धरि लैंइ प्रसाद न पावैं ।।
तब तौ घर-घर सब जन दूखे । अपराधी मानें भये रूखे ।।
इन कहि प्रभु पै अज्ञा लेहु । ठाकुर कहैं दोष तव देहु ।।
मुदरथ[4] तिहिं दिन तहाँ सुबाये । तासौं 'जगन्नाथ बतराये ।।
"सब अवतारनि के हैं अंशी । जुगलकिशोर धरैं कर वंशी ।।
श्री वृन्दावन कुंज विहारी । वैभव कमलापति[5] तैं भारी ।।

---

१ श्यामा श्याम के मुखचन्द्र । २ जगन्नाथपुरी पहुँच गये । ३ प्रसाद की हँडिया । ४ जगन्नाथ जी के सिद्ध भक्त । ५ नारायण ।

तिनकी सेवा विषै परायन। जिनही तैं हम रमा नरायन[1] ॥
उनकौ महा प्रसादहि लेत। अहैं अनन्य दोष कत[2] देत ॥
जे नर कुल वर्णाश्रम मानि। मम प्रसाद में करत गलानि ॥
अपरस-परस विचारि[3] जो त्यागत। तिनहिं महा अपराध जु लागत ।'
इनकैं सर्वसु इष्ट प्रसाद। ये अनन्य कोउ करहु न वाद ॥
इक रस इष्ट भक्ति नित साध। तिनकी गति,मति,रति जु अगाध'' ॥
एसें जगन्नाथ जू कह्यौ। सबनि सुन्यौ मन अचिरज लह्यौ ॥
तब तैं इनकौं मानि अनन्य। कहत भये सब ही धनि धन्य ॥
जगन्नाथ यह आयुष[4] दीनौं। संत-महंतनि सब सुनि लीनौं ॥
दोष-भाव तजि कियौ सनेह। इष्ट प्रसाद अनन्य अछेह[5] ॥
जुगल-भावना में नित रहैं। तिनके अंसकला सब चहैं[6] ॥
तिनही की विभूति सब मानैं। यौं विचरत उर और न आनैं ॥
एक समैं पूरब में रहैं। दिन द्वै आयु ज्योतसी कहैं ॥
देह कष्ट हू पावत भई। निष्ठा वृन्दावन तनमई[7] ॥
बैदनि कही नाडिका छूटी। बानी बुद्धि इष्ट सौं जूटी[8] ॥
लोग कहैं पुरुपोत्तम धाम। देह तजौ ह्याँ सुख विश्राम ॥
यह बोले मेरें यह निहचै। यह मम देह विपिन[9] ही पहुँचै ॥
है विश्वास सुदृढ़ मन माहीं। यह तन अनत[10] परन कौ नाहीं ॥
करि पालकी तहाँ तें निकसे। उत्सव वनके तन-मन विकसे ॥
सीथप्रसाद चरन जल पावैं। भाव भावना जुत गुन गावैं ॥
ज्यौं-ज्यौं वृन्दावन दिसि आवैं। त्यौं-त्यौं तेज प्रतापहिं पावैं ॥

दोहा—दिये दमामे[11] पैज[12] करि, आयौ वन द्वै मास।
माया काल गिन्यौ नहीं, कठिन समुझनौं गाँस[13] ॥

---

१ लक्ष्मीनारायण। २ क्यों। ३ छुआछूत का विचार करके। ४ आज्ञा। ५ निरन्तर। ६ मानते थे। ७ तन्मय हो गई। ८ जुट गई, मिल गई। ९ श्रीवृन्दावन। १० अन्यत्र। ११ नगाड़े। १२ हठ। १३ लगन।

श्री राधावल्लभ भजनवर, हित हरिबंश सुरीति।
हरीदास परिकर मिले, जाके बल जग जीति ॥

विदित आय पायौ विपिन, 'भगवत' यह जन धीर।
साधु सभा देखत मिले, इहँहि छाँड़ि शरीर ॥

अथ श्री परमानन्ददास जी की परचई

श्री हरिवंश चरन चित लाऊँ। तिनके भक्तनि के गुन गाऊँ
परमानन्द रसिक की कथा। लिखौं सुनी संतन मुख जथा
बड़े शूर छत्री के पूत। अनन्य भक्ति की रीति अभूत[१]
शाह हुमायूँ के हे चाकर। खिजमत[२] पाइ रिझाये जाकर
मनसब[३] दियौ कियौ बहु प्यार। पंचसदी[४] रु इते असवार
जहाँ पठयौ तहाँ कारज कियौ। बारम्बार इजाफा[५] लियौ
राजा ह्वै ठठ्ठे[६] में आयौ। तीन हजारी मनसब लायौ
सुख दै प्रजहि सँवारयौ राज। सावधान स्वामी के काज
सबै मवासी[७] चुनि-चुनि मारे। सरनाये तिनके रख वारे
द्रव्य शाह कौं बहुत पठायौ। तब नरेन्द्र अति ही सुख पायौ
जहाँ-तहाँ अति भई बड़ाई। रीझ[८] शाह नें भली पठाई
चाकर भलौ भलाई पावै। परधन में जो चित न चलावै
पंडित गुनी रहैं नित संग। गीता सुनै सुधर्म प्रसंग
दया-धर्म मन में बहु धरैं। षट दरसन कौ आदर करै
सेवा करि साधुनि सिर नावैं। अमृत दानी वचन सुनावै
गुरु करिबे की इच्छा करै। जानैं गुरु बिन काज न सरै
कर्म रु ज्ञान भक्ति कौं जानैं। सतगुरु बिन निश्चै नहिं आनै

१ अपूर्व। २ नौकरी। ३ जागीर। ४ पाँचसौ पैदल सैनिक। ५ पदवृ[illegible]
६ सिंध का एक भाग। ७ डाकू। ८ इनाम।

पूरनदास विरक्त अनन्य । श्री हरिवंश धर्म सम्पन्य ॥
प्रभु इच्छा करि ठट्ठे आयौ । पंडित गुनीनु दर्शन पायौ ॥
इनके गुन सुनि नृपहिं सुनाये । आदर सौं पूरन पधराये ॥
राजा देखि परम सुख पायौ । दिन-दिन अधिक सनेह बढ़ायौ ॥
चर्चा करि संदेह नसायौ । श्री हरिवंश कौ धर्म सुनायौ ॥
'यह जु एक मन' कौ पद गायौ । व्यासहिं कह्यौ सु अर्थ बतायौ ॥
राजा के मन निश्चै आई । गुरु हरिवंश करौं सुखदाई ॥
जे प्रपंच ते न्यारे करैं । ये गुरु होंइ तौ कारज सरैं ॥
निसि दिन नृप कें रटना रहै । श्री हरिवंश नाम-गुन कहै ॥
बार-बार पद-अर्थ बिचारै । पूरन की सेवा विस्तारै ॥
श्री हरिवंश चरण चित लसै । नव अभिलाषा मन में बसै ॥

दोहा—आरति[1] लखि निजु दास की, सुपन माँहि सुख दीन ।
दिक्षा नाम सुनाइ कै, भृत्य आपुनौं कीन ॥

पन्द्रह सै बानवै भादौं सुद । नवमी दिक्षा लई भये मुद ॥
सदाचार भागौत सुहायौ । आन धर्म मन तैं बिसरायौ ॥
तिलक दाम[2] नामांकित छाप । गुरु-सेवन सत्संग प्रताप ॥
प्रभु सेवा में लागे प्रान । भये अनन्य न मानै आन ॥
श्री गुरु कृपा पुजी मन आस । नितविहार उर भयौ प्रकास ॥
श्री हरिवंश नाम गुन गावै । श्री गुरु कथा सुनत सुख पावै ॥
श्री हित जानैं मैं सिष कीनौं । शिष्य रहै गुरु के रँग भीनौं ॥
पूरन बहुत दिना लौं राखे । इक दिन वचन चलन के भाखे ॥
रुदन करत उर सौं उर लायौ । बिछुरत हियौ कंठ भरि आयौ ॥
तिन सँग गुरु कैं भेंट पठाई । जे सुठि राजभवन में पाई ॥
बारह बरस ठट्ठे में गये । लिख्यौं शाह कौं बूढ़े भये ॥

[1] दीनता । [2] कंठी ।

मेरे बदले और पठावहु । मोकौं वन एकांत बसावहु ॥
बिनती लिखी शाह पै आई । और भेजि ये लिये बुलाई ॥
कह्यौ शाह सौं ज्ञान विराग । नित्य-अनित्य विवेक विभाग ॥
दुःख रूप लखि मनसब तज्यौ । बसिवौ वृन्दावन कौ सज्यौ ॥
श्री हरिवंश चरन परतक्ष । सफल किये लखि अपने अक्ष[1] ॥
सपने में जब दिक्षा दई । देखत सब के प्रगटत भई ॥

दोहा—कहा न होइ सत्संग तें, कह्यौ गुसाईं आप ।
पूरन के परताप तें, मिट्यौ जगत-संताप ॥

वृन्दावन वसि गुरु-पद भजे । साधुनि सेवा करत न लजे ॥
गुरु दयालु जब कीनी दया । कुंज महल रस अँचवत भया ॥
परमानंद पूरन पद पायौ । श्री राधावल्लभ लाल लड़ायौ ॥
रूप–माधुरी-रस में पगे । परमानंद सुख बिलसन लगे ॥
बुधि इन्द्री बल अति अभिराम । सौजु वरसि कौ पठयौ धाम ॥

दोहा—दिन दूलह दिन दुलहिनी, श्री राधावल्लभ लाल ।
श्री हरिवंश प्रताप ते, निरखि परे छवि-जाल ॥
महिमा भक्तनि की बड़ी, 'भगवत' कही न जाइ ।
पूरन परमानंद कौं, हित-पद दिये दरसाइ ॥

१ नेत्र ।

अथ श्री प्रबोधानंद जी की परचई*

दोहा—अब सुनि श्री हरिवंश पद, गह्यौ प्रबोधानंद।
पायौ नित्य-विहार सुख, तज्यौ सु ब्रह्मानंद ॥

प्रबोधानंद हुते संन्यासी। जाके गुरु मत शून्य उदासी ॥
द्वितिय सरस्वती सब दिसि जीती। पंडित बड़े बड़े अविनीती[1] ॥
काशी से वृन्दावन आये। एक मास रहि अति सुख पाये ॥
सबही ठाकुर द्वारे देखे। और सबै आचारज पेखे ॥

---

१ अविनत, उद्दण्ड।

* प्रबोधानन्द, रामभद्र, जगदानन्द कलियुग धनि।
परम धरम प्रति पोषकौं संन्यासी ये मुकुट मनि ॥१८१
—नाभादासकृत 'भक्तमाल'

युगल-प्रेम रस-अवधि में, परचौ प्रबोध मन जाइ।
वृन्दावन रस-माधुरी, गाई अधिक लड़ाइ ॥२६
—हित ध्रुवदासकृत 'भक्तनामावलि'

श्री हरिवंश उदार गोप्य रस-रीति बखानी।
ताही मत आरूढ़ गूढ़ गुन केलि जु गानी ॥
सर्व धर्म सब धाम-शिरोमणि यह वन-रस है।
बिना बास रस परसि भये विनु मनु नर पसु है ॥
यौं कीन्हौ कथन कृपालु ह्वै वृन्दावन मम होहु गति।
महा मधुर रस में रसिक भये प्रबोधानन्द अति ॥१२५
—चाचा हित वृन्दावनदासकृत 'रसिक अनन्य परचावलि'

श्री हरिवंश प्रताप के अष्टक करि निर्धार।
तिहि प्रसाद वनराज को वर्णन कियौ विहार ॥
रसनि अग्र बसै सरसुती जीति लई दिसि चार।
मानसरोवर परसि तन रही न देह संभार ॥
सहचरि-सुख अति मधुर पर फीकौ ब्रह्मानन्द।
परमानन्द प्रताप वन बसे प्रबोधानन्द ॥६९
—गोविन्द अलि जी कृत 'अनन्य रसिक गाथा'

सब के मत नीके करि जाने। पै प्रबोध के मन नहिं माने ॥
परमानंद रसिक कहुँ मिले। चरचा करत दुहुनि मन खिले ॥
नित-विहार की चरचा ठानी। सो प्रबोध नें मनहिं न आनी ॥
श्रुति-स्मृति इतिहास सुनाये। सनक संहिता के मत गाये ॥
आगम बांदन बृहद पुराण। इनहि आदि कहे बहुत प्रमान ॥
तामें मानसरोवर कह्यौ। नित्य-विहार रसिक जन लह्यौ ॥
सुनि के मानसरोवर रीति। श्रद्धा भई करी कछु प्रीति ॥
तब प्रबोध के मन कछु आई। रैंन सरोवर बसे जु जाई ॥
बैसाखी पून्यौ कौं गयौ। मन एकत्र कियौ सुख लयौ ॥
गोधन देखि परम सुख पायौ। पाछैं ठौर उदास जनायौ ॥
घरी दोइ राति जब गई। रीती भूमि भयानक भई ॥
पाछैं सिंह-सिंहनी धाये। तिनकी गरज सुनत संकाये ॥
पाछैं नाग-नागिनी देखे। डरयौ न विषधर भयद[1] अलेखे[2] ॥
पाछैं पवन बुहारी दई। बादर उलह्यौ[3] बरषा भई ॥
शीतल मंद सुगन्ध समीर। आनँद बाढ़्यौ सकल शरीर ॥
प्रबोधानन्द कौं निद्रा आई। सुसुप्त मगन तन-दशा भुलाई ॥
कुंजविहारी यहै विचारी। यह ह्याँ कौ नाहीं अधिकारी ॥
अबहीं याके बहुत कचाई। रसिक संग बिनु भरम[4] न जाई ॥
मथुरा कुटी माँझ पहुँचायौ। मानसरोवर रहन न पायौ ॥
प्रात जग्यौ तब मन में आई। नित्य-विहार सही सुखदाई ॥
परमानन्द वचन सत[5] जान्यौ। अपनौ हठ सब झूंठौ मान्यौ ॥
तब परमानन्द के घर आये। सरवर[6] के विरतान्त सुनाये ॥
तुम्हरौ वचन भयौ परमान। नित-विहार रस कौ करि दान ॥

---

१ भयानक। २ ध्यान नहीं दिया। ३ उमड़ आये। ४ भ्रम। ५ सत्य।
६ मानसरोवर।

तब परमानन्द के मन भाये । या रस के दाता जु बताये ॥
श्री हरिवंश चरण जब सेवै[1] । तब या रस के जानैं भेवै[2] ॥
सुनि प्रबोध वृन्दावन आये । दरसन किये परम सुख पाये ॥
परमानन्द प्रबोध हित कही । सो विनती हितजू मन गही ॥
ये संन्यासी हम हैं ग्रेही[3] । मन करि भाव धरौ जु सनेही ॥
सेवन करि परतीति बढ़ाई । नित-विहार की शिक्षा पाई ॥
स्तुति अष्टक करि सुठि करी* । चित्त-वृत्ति हित-चरननि धरी ॥
सुनि करुणा करि रीति बताई । अभिलाषा पुजई मन भाई ॥
नित-विहार आनंद सुनायौ । सुख-सागर नैननि दरसायौ ॥
दीपक सौं लगि दीपक होई । एकहि धरम न संसय कोई ॥
सावधान ह्वै ध्यान लगायौ । 'श्री वृन्दावन शत'[4] दरसायौ ॥
दंपति सुख संपति चित लायौ । श्री गुरु इष्ट साधु मन भायौ ॥
रसिक अनन्य धर्म परिपाटी[5] । जानि गही हितजी की घाटी[6] ॥
श्री राधावल्लभ की करि आस । सुदृढ़ भयौ वृन्दावन वास ॥
नित-विहार रस वर्णन कियौ । रसिक जननि कौ सींच्यौ हियौ ॥
निपट[7] रहस्य केलि कल गाई । वृन्दावन निष्ठा सुदृढ़ाई[8] ॥
कुंज-रहस्य ग्रन्थ बहु कीने । अर्थनि जानत रसिक प्रवीने ॥

दोहा—श्री परबोधानंद की, बानी वेद प्रमान ।
रसिक अनन्यनि कौं सुखद, 'भगवत मुदित' सुजान ॥

---

१ सेवन करे । २ भेद,रहस्य । ३ गृहस्थ । ४ श्री प्रबोधानन्द रचित ग्रन्थ । ५ परम्परा । ६ मार्ग । ७ नितान्त, सर्वथा । ८ दृढ़ बनाई ।

* देखिये परिशिष्ट–अ

अथ श्री कर्मठी बाई जी की परचई

दोहा—श्री हरिवंश प्रताप की, सुनियौ कथा अनूप ।
प्रेम-भक्ति करि सत[1] रह्यौ, बाई[2] सुन्दर रूप ॥

अब सुनि एक कर्मठी बाई । ताकी कथा परम सुखदाई ॥
विप्र एक पुरुषोत्तम नाम । काथरिया बागर[3] विश्राम ॥
कन्या एक तासु कें भई । ब्याहत ही विधवा ह्वै गई ॥
तप-व्रत शुचि संयम में रहै । तातें नाम कर्मठी कहैं ॥
द्वादश वर्ष वयक्रम[4] भयौ । विधिना ठाठ और ही ठयौ ॥
पति पितु दोऊ कुलके जु समाये[5] । ताऊ बिरध[6] भक्ति मन भाये ॥
तिनकौ नाम सुनौ हरिदास । श्री हरिवंश चरण की आस ॥
कन्या पै तप-व्रत जु छुड़ायौ । भगवत धर्म सुकर्म दृढ़ायौ ॥
वह थल वाकौं नहीं सुहायौ । कन्या लै वृन्दावन आयौ ॥
श्री हरिवंश दरस शुभ पायौ । या कन्या कौं नाम सुनायौ ॥
गुरु-पद्धति सेवा अनुसरी । श्री राधावल्लभ अपनी करी ॥
जबतें हितजी नाम सुनायौ । दुख-सुख असत जानि बिसरायौ ॥
कथा-कीर्तन मिलि गुन गावैं । अति उदार मन द्रव्य लुटावै ॥
गुरु अरु इष्ट साधु सम अरचै । उत्सव माँझ जु सरबसु खरचै ॥
धन खरच्यौ फिरि हाथ न आवै । काति तूल[7] कैं भोग लगावै ॥
आवै जाहि तो प्रभु कौ जानैं । अपनी सत्ता नेकु न मानैं ॥
स्वारथ विषैं वासना दही । परमारथ में साँची सही ॥
बनियाँ एक परौसी रहै । विषय बात वह देखत कहै ॥
बहुत उपाइ जतनि करि हारचौ । कामी मूढ़ दई कौ मारचौ[8] ॥
देखत रूप ठगौरी लागी । काम-अगिनि उर-अन्तर जागी ॥

---

१ सतीत्व । २ कर्मठी बाई । ३ स्थान का नाम । ४ अवस्था । ५ मरगये । ६ वृद्ध । ७ रुई । ८ विधाता से शापित ।

तब इन मन में ऐसी आनी। विषय करनिकौं मति ललचानी ॥
रैंन अँधेरी घर तें आयौ। काल सरूप सर्प ने खायौ ॥
खात बार इन कही पुकार। खायौ साँप करौ उपचार ॥
बहुत उपाइ जतन करि हारे। गुनी भरे वाके घर सारे ॥
आधी रात बनिक वह मरचौ। भक्त-द्रोह तें नर्क जु परचौ ॥
इक दिन सुत के सपने आयौ। नर्क परे कौ दुःख सुनायौ ॥
द्रोह कर्मंठी के अघ[1] परचौ। द्रव्य बतायौ गाड़ि जु धरचौ ॥
जाय कर्मंठी के पग परौ। मेरी कथा निवेदन करौ ॥
वह धन प्रभु कौं भोग लगावहु। आज्ञा लै संतनि भुगतावहु ॥
यह विधि मेरौ करि उद्धार। करि प्रसन्न जिनि लावहु वार[2]॥
तब वह बनिक-पुत्र धन लियें। सुप्न-कथा कहि पाइन छियें ॥
हे माता, अब करुना करौ। अपराधी कौं तुम उद्धरौ ॥
कही कर्मंठी यह धन खरचौ। गुरु करि हरि-हरिजनकौं अरचौ[3]।
जीव अविद्या करि दुख पावै। बिनु हरि-भजन न नर्क नसावै ॥
अब तुम आवहु गुरु की सरन। तातें होइ नर्क कौ तरन[4] ॥
एसें कहि के बनिक उधारे। दुष्टन हू के कारज सारे ॥

दोहा—दोष-दृष्टि हरि-भक्त सौं भूलि करौ जिन कोइ।
नर्क परें पुनि शरन तें, उद्धारन हू होइ ॥

और कर्मंठी की सुनि बात। जाके सुनत अशुभ सब जात ॥
अकबर कौ हो धाय जु भाई। अजीज बेग जिनि मथुरा पाई ॥
हसन बेग तानें जु पठायौ। करै हाकिमी सब मन भायौ ॥
एक दिना वृन्दावन आयौ। कुंजनि निरखि परम सुख पायौ ॥
कर्मंठी न्हान जमुन जल आई। हसन बेग ने देखि जु पाई ॥
करौं जतन ज्यौं घर में आवै। साहिब[5] ऐसी नारि मिलावै ॥

१ नरक। २ देर, विलम्ब। ३ अर्पण करो। ४ उद्धार। ५ ईश्वर।

दूती द्वै जब लैन पठाईं । महा सुघर कुसलाबन आईं ॥
वन बसि रीति-भाँति सब जानी । तब तौ उन वैसी विधि ठानी ॥
दूती कहै यों हाथ न आवै । यह तो भक्त-भेष पतियावै[1] ॥
तब इक भक्त-भेष धरि आई । कथा-कीरतन मति भरमाई[2] ॥
लई सीख सुनि वैसी बातें । बस करिबे की कीनी घातें[3] ॥
चरचा करै करै सुठि सेवा । आज्ञा माँगि रहै लखि भेवा[4] ॥
मन लै चलै प्रतीति बढ़ावै । मिलिकैं महा प्रसादहिं पावै ॥
जो-जो कछू उपाइ बनावै । हसनबेग सौं सब कहि आवै ॥
दिन द्वै बीच देइ तब आई । कमंठी कही 'कहाँ रहि माई' ॥
'एक साधु मेरे घर आयौ । परम पुनीत दरस हम पायौ ॥
महा अनन्य उपासक आये । राग-रंग करि अति सुख छाये' ॥
कर्मठी कही हमैं जु दिखावहु । भली बात तुम दरशन पावहु ॥
करि स्नान जमुन तैं आवहुँ । तब तुम कौं दर्शन करवावहुँ ॥
अपनै घर बैठाइ जु आई । हसनबेग कौं आइ सुनाई ॥
चलि बाई दरशन की बेर । करत रसोई होइ अबेर ॥
सुनत बचन दूती सँग आई । घर एकान्त तहाँ बैठाई ॥
नैन-सैन[5] दै कैं टर गई । कर्मठी तहाँ अकेली भई ॥
'हौं वा साधुहिं लैहुँ पुकार' । कहि बाहिर तें जड़े किवार ॥
हसनबेग तब वदन दिखायौ । देखि कर्मठी अति भय पायौ ॥
चाहै उरजनि हाथ लगायौ । और कुकर्म करनि ललचायौ ॥
तब हितजू कौ सुमिरन करचौ । प्रभुजी सिंहनि कौ वपु धरचौ ॥
याहि कर्मठी दीसत नहीं । सिंहनि दीसत जहाँ-तँहीं ॥
गर्जत याहि खानि कौं दौरी । आयौ भाजि बाहरी पौरी ॥
खोलि-खोलि दूती पट कहै । यह सिंहनि मोहि खायौ चहै ॥

---

१ विश्वास करना । २ बहका दिया । ३ उपाय । ४ भेद । ५ संकेत ।

जो दूती पट खोलि निहारै। मरचौ-मरचौ कहि हसन पुकारै॥
थर-थर काँपै बोलि न आवै। ज्यौं-त्यौं करि वह बात सुनावै॥
फिरि देखै तौ ह्वाँ कछु नाहीं। कर्मठी देखी निजु घर माहीं॥
तब तौ इन फिर खबर मँगाई। सेवा करति कर्मठी पाई॥
हसनबेग ने परचौ पायौ। तब अपराध छिमावन आयौ॥
बिनती करि कैं चूक मिटाई। सौ मुहरें लै भैंट चढ़ाई॥
हम कौं साधु चरन-रज भावै। यह धन मेरे काम न आवै॥
तब वाहू कैं भयौ वैराग। साधुनि सौं जोरचौ अनुराग॥
हसनबेग ने धन ढँग लायौ[1]। जिततित साधुनि कौं बरतायौ[2]॥

दोहा—कही कर्मठी की कथा, 'भगवत' राख्यौ धर्म।
अनन्य भक्त के दरस तें, कटैं जगत के कर्म॥

अथ श्री सेवक जी की परचई*

दोहा—सेवक सम सेवक नहीं, धर्मिन[3] माँझ प्रधान।
श्री हरिवंश के नाम गुन, बानी सर्वसु जान॥

गौंड़देश[4] में गढ़ा[5] निवास। तहाँ बसैं जु चतुर्भुज दास॥
तिन सौं सेवक सौं निजु प्रीति। कपट रहित सौजन्य[6] विनीत॥
उत्तम कुल द्विज प्रगटे दोऊ। पंडित चतुर सुहृद पुनि सोऊ॥
अरु हरि-भक्तनि सौं अनुराग। सेवा करि सुचि[7] मानैं भाग॥

---

१ उचित व्यवस्था करदी। २ बाँट दिया। ३ सम्प्रदाय के मानने वाले। ४ गौंडवाना, जिस क्षेत्र में गोंड राजाओं ने राज्य किया। ५ स्थान का नाम। ६ सैज्जनता। ७पवित्र

* सेवक की सर को करैं, भजन-सरोवर-हंस।
मन, वच कै धरि एक व्रत, गाये श्री हरिवंश॥४४
वंश विना हरिनाम हू, लियौ न जाकै टेक।
पावै सोई वस्तु कौं, जाके है व्रत एक॥४५
—हित ध्रुवदास 'भक्त नामावलि

गुरु करिबे कौ करें विचार। ह्वै न सकै क्यौं हूँ निरधार[1]
इक दिन रसिक उपासक आये। तिनसौं मिले परम सुख पाये
निसि बसि उन कीन्हौं प्रभु गान। तामैं जुगल-केलि परधान
रसिकन इनकी श्रद्धा जानी। पूछी शिष्य कहाँ के मानी
अबहिं विचार करत हैं वही। तुम जो बतावहु सो गुरु सही
वृन्दावन में श्री हरिवंश। ते अबहीं सब रसिक प्रसंस
प्रीति-रीति अरु रहनि सुहाई। जगत-क्रिया तें पृथक[2] बताई
सुनि-सुनि दोउजन दृढ़ व्रत धरयौ। श्रीहरिवंश चरन चित अरयौ
नवल संग करि पहुँचे व्यास। सोई सुनि आयौ विश्वास

---

[1] निश्चय। [2] अलग, परे या गूढ़।

श्री गुरु पहुँचे धाम सुनत परतिज्ञा कीन्ही।
उर भयौ दृढ़ विश्वास आइ प्रभु दिक्षा दीनी।।
तिहि छिन भयो प्रकाश रूप-हित पूरन दरस्यौ।
जपत नाम हरिवंश और कछु दृष्टि न परस्यौ।।
पद्धति-अनन्य रस-रीति कौं श्री सेवक व्रत निर्वह्यौ।
श्रुति-स्मृति कौ सार मथि नाम संजीवनि जिन कह्यौ।।१०९

अतिशय गिरा गंभीर भाव दह पैठि न आवै।
नाम रूप रस बेहद कोऊ पार न पावै।।
अक्षर अर्थ समुझिबे बहु कोविद जन दहलैं।
पुनि ये रसिक सुजान रीझि कुंजर ज्यौं चहलैं।।
निजु वेद हृदौ ज्यौं प्रभु लखहिं अरु सब थकित विचार करि।
श्री सेवक सम सेवक न जग हरिवंश रूप दरसे जु हरि।।११०

—चाचा हित वृन्दावनदास—'रसिक अनन्य परचावि

प्रथम श्री सेवक पद सिर नाऊं।
करहु कृपा दामोदर मोपैं श्री हरिवंश चरण रति पाऊं।।
गुण गंभीर व्यास नन्दनजू के तुव परसाद सुयश रस गाऊं।
नागरिदासके तुमहि सहायक रसिक अनन्यनृपति मन भाऊं।।

—नेही नागरीद

चल न सके स्वारथ अटकाये । एसेहि कहत बहुत दिन लाये ॥
ह्वाँ हित जी अन्तर हित भये । सुनि कै विरह-ताप तन तये ॥
अन्तर्धान सुनी जब बात । अति उन्मत्त दशा भई गात ॥
घर-बाहिरजु सदा व्याकुल मन । आरत दुखित जु हित दरशन बिन॥
पुनि यह सुनी जु श्री वनचंद । हित-आसन थित[1] देत अनंद ॥
श्री हरिवंश चन्द्र कौ धर्म । प्रगट करत जु हरत भव-भर्म ॥
चतुरभुज सेवक सौं तब कही । गुरु कीजे वनचंद जु सही ॥
सेवक कही वही प्रण मेरैं । हितजी मोहिं दया करि हेरैं ॥
मेरें हठ हितजी कौं देखौं । जीवन-जन्म सफल तब लेखौं ॥
दीक्षा तौ हितजी पै लेऊँ । नातरु[2] तौ यह तन तजि देऊँ ॥
यहै मनोरथ उर अति चाउ । गुरु-दरशन में सांचौ भाउ ॥
यह सुनि चत्रभुज वन कौं चले । सेवक प्रणतें नेकु न हले ॥
चत्रभुज गुरु सु किये वनचन्द । पूरन भई कामना वृन्द ॥
सेवक कौं वहाँ सुपनौं आयौ । गुरु सुकृपा तैं वन पहुँचायौ ॥
तहाँ हितजी ने दरशन दियौ । सिरपर कर धरि अपनौ कियौ ॥
सुपनें ही में मंत्र सुनायौ । इष्ट-धर्म सब भेद बतायौ ॥
श्री वृन्दावन दियौ दिखाइ । जमुना कुंज लखीं सब आइ ॥
परिकर सहित प्रिया-पिय देखे । तब तो भाग सुफल करि लेखे ॥
बहुरि कृपा करि बानी दई । बरननि लगे विविध छवि नई ॥
सुपन माँहि गुरु यह निधि दीनी । सकल कामना पूरन कीनी ॥
चत्रभुजदास विपिन ह्वैं आये । सब वन के वृत्तान्त सुनाये ॥
घर ही में सुकृपा गुरु करी । सो सब सेवक नैं उच्चरी[3] ॥
जोई मंत्र चत्रभुज सुनि आये । सोई मंत्र सेवक घर पाये ॥
सेवक वानी सुनत सिहाये । तब तौं पग गहि उर लपटाये ॥

---

१ स्थित, आसीन । २ नहीं तो । ३ बतादी ।

वानी में गुरु-हरि सम राखे । वानी बाल-चरित सब भाखे ॥
वानी में गुरु-वानी भाव । गुरु-वानी कौ बरन्यौं चाव ॥
सेवक वानी में रस-रीति । रसिक अनन्यनि कें परतीति[१] ॥
वानी में सर्वसु हरिवंश । वानी माँहि प्रेम के गंश ॥
वानी में हरिवंश प्रताप । वानी में हित कौ जप-जाप ॥
वानी रसिक अनन्यता बरनी । धर्मी-धर्म-रीति मन हरनी ॥
कृपा-अकृपा पात्र सब कहे । काचे-पाके रसिक जु लहे ॥
वानी में विधि नाँहि निषेध । बरने अवतारन के भेद ॥
जाति-बरन-कुल कौ व्यौहार । सब तजि कह्यौ धर्म हितसार ॥
ग्रह नक्षत्रादिक कुलहि न जानें । श्री हरिवंश धर्म ही मानें ॥
रसिक अनन्य धर्म निजुसार । सेवक वानी में निर्धार ॥
सेवक वानी जो नहिं जानें । तिनकी बात रसिक नहिं मानें ॥
जब सेवक बानी उर धरें । श्री हरिवंश कृपा तब करें ॥
श्री बनचंद सुनी यह वानी । सेवक दरसन की मन ठानी ॥
जा दिन सेवक कौं लखि पाऊँ । तौ हौं सब भंडार लुटाऊँ ॥
यह प्रण श्रीबनचंद जु कियौ । सेवक सुनी थरहर्यौ हियौ ॥
मेरे गयें लुटै भंडार । प्रभु-दरसन कौ रह्यौ विचार ॥
यह सुनि पत्री लिखी गुसाईं । आवहु बेगि सौंह[२] बहु द्याईं ॥
वेष बदलि छिपि दरसन कीनौं । प्रन देखे लक्षन करि चीन्हौं ॥
नेह-भरी चितवनि तें जान्यौ । बड़ी भीर में यौं पहिचान्यौ ॥
तबै गुसाईं उठि कैं मिले । रोम-रोम आनँद में झिले ॥
तब सेवक यह वचन सुनावै । प्रभु की सौंज[३] लुटन नहिं पावै ॥
सिर धरि पाँइन कौं गहि रह्यौ । बहुरि गुँसाई जू यौं कह्यौ ॥
मैं हूँ रीझि कियौ प्रण ऐसें । तुम यह कहौ बनत अब कैसें ॥

१ विश्वास । २ शपथ । ३ सामग्री ।

सेवक बात मानि हम लीनी। सौंज प्रसादी तुम पर दीनी ।।
एसे गुरु धर्मिन पर रीझत। न्यौछावर है कें रस भीजत ।।
तब तें अज्ञा दई गुसाईं। पोथी दोऊ मिली लिखाईं ।।
'चौरासी' अरु 'सेवक-बानी'। इक सँग लिखत-पढ़त सुखदानी ।।

दोहा—नहीं उपासक दूसरौ, सेवक सौ कोउ आन।
'भगवत मुदित' भये सुगुरु, प्रण पार्‌यौ हित मान ।।

ग्रन्थकार ने अन्त में 'सेवक' जी के सम्बन्ध में श्री नाथ भट्ट कृत यह सवैया उद्धृत किया है :—

मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध न कोऊ सेवक-सौ हरिवंश उपासक।
आन धरम्मिनि सौं नहिं संग हरिवंश–धरम्मिनि में वस वासक ।।
हरिवंश पतिव्रत लै निबह्यौ दुख पाइ खिसाइ रहे उपहासक।
हरिवंश कृपा रस मत्त सदा सोइ 'नाथ' कहैं अब यामें कहा सक ।।

अथ श्री चतुर्भुजदास जी की परचई*

दोहा—चरण कमल हरिवंश बल, बनमाली गुरु आस।
गौंड देश पावन कियौ, रसिक चतुर्भुजदास ।।

श्री हरिवंश धर्म उर धार्‌यौ[1]। चत्रभुज[2] गौंड देश उद्धार्‌यौ ।।

---

१ अंगीकार किया। २ 'परचई' में 'चत्रभुजदास' और 'चतुर्भुजदास' दोनों नामों का उपयोग चतुर्भुजदास जी के लिये हुआ है।

* गायौ भक्ति–प्रताप सबहिं दासत्व दृढ़ायौ।
राधावल्लभ भजन अनन्यता वरग बढ़ायौ ।।
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निरदूषन।
भक्तन की अंघ्रि–रेनु वहै धारी सिर-भूषन ।।
सतसंग महा आनन्द में प्रेम रहत भीज्यौ हियौ।
(श्री) हरिवंश चरण बल चत्रभुज गौंड देश तीरथ कियौ ।।

—नाभादासकृत 'भक्तमाल' १२३

(शेष टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें)

चरणन परसत वार न लागी । (श्री) राधावल्लभ में मति पागी ॥
इष्ट-प्रताप प्रकाशित भयौ । प्रगट भयौ जग में जस छयौ ॥
संतप्रताप© सनेह बढ़ायौ । परम पुनीत सुमंगल© छायौ ॥
धर्म विचार© सुपृथक सुनायौ । शिक्षा सकल समाज© बतायौ ॥
भक्ति प्रताप© अरु संत प्रताप© । शिक्षा सार© जु कह्यौ अलाप ॥
पतित पावन जश© हित उपदेश©। जस मोहिनी© अनन्य उपदेश©॥
श्री राधा प्रताप© सुठि भाख्यौ । हित हरिवंश चरण चित राख्यौ ॥

© चतुर्भुजदास जी द्वारा रचे गये बारह 'यश' ।

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी—

परम भागवत अति भये, भजन मांहि दृढ़ धीर ।
चतुर्भुज वैष्णवदास की, बानी अति गंभीर ॥४८
सकल देश पावन कियौ, भगवत यशहिं बढ़ाइ ।
जहाँ-तहाँ निज एक रस, गाई भक्ति लड़ाइ ॥४९

—हित ध्रुवदासकृत, 'भक्तनामावलि'

गौंड देश परवेश भूप किय आज्ञाकारी ।
देवी दै उपदेश भूत जोगिन सब तारी ॥
'द्वादश यश' हरि धर्म कथन कीयौ सर्वोपर ।
प्रभु-दासन के दास सेव्य राधा-मुरलीधर ॥
श्री हरिवंश प्रसाद तें भक्ति बिस्तरी चत्रभुज ।
जुगल-चरित हित चित रमैं रोपी धर्म अनन्य धुज ॥१२१

—चाचा हित वृन्दावनदासकृत, 'रसिक अनन्य परचावलि'

वनमाली गुरु आस वास वन गृह तजि आये ।
मुरलीधर सिर धारि सन्त सम लाड़ लड़ाये ॥
गौंड देश कियौ भक्त प्रेत, देवी, नृप मानैं ।
चीर वेष भयौ साह विदित सब सन्त बखानैं ॥
व्यास सुवन सन्तत बसैं हिये निर्मले नीर ।
सुनौ चतुर्भुज जस गिरा द्वादश विमल गंभीर ॥५८

—गोविन्द अलि जी कृत, 'अनन्य रसिक गाथा'

पंडित बहुत रहत हैं संग । थापत[1] भक्ति अनन्य अभंग ।।
माला-तिलक प्रताप बखान्यौ । चरणोदक प्रसाद मन मान्यौ ।।
श्री राधावल्लभ जीवन-मूरि । हरख-शोक दुख-सुख सों दूरि ।।
'मुरलीधरन' छाप कविता में । श्रुति-स्मृति कौ सार है जामें ।।
प्रभु-उत्सव करैं सब तें अगरौ । आवै द्रव्य लुटावैं सगरौ ।।
नगर मांझ भयौ जै-जै कार । विमुखन के उर उठ्यौ विकार ।।

दोहा—'भगवत' जिन उर नित बसैं, राधावल्लभ लाल ।
तिनकों ये परसैं नहीं, दुख-सुख माया-जाल ।।

अब सुनि चत्रभुज के सुचरित्र । तन-मन जातें होय पवित्र ।।
गौंड देश ठौर इक रहै । बाग एक भूत बहु दहै ।।
बड्डे प्रेतन कौ दृढ़ वास । छलैं तिनहिं जे आवैं पास ।।
खेती कोऊ करन न पावैं । मारैं बैलनि खेत नसावैं ।।
नरनारी बालकनि जु मारैं । महा प्रेत दुख देत न हारैं ।।
द्वै-सै संत संग मुरलीधर । करमठ सठनिके जु घालक-घर ।।
चाहैं कहूँ ठौर होइ नीकी । सेवा-पाक करैं प्रभुजी की ।।
विमुख जननि हँसि जुक्ति[2] उपाई । चत्रभुज कौं वह ठौर बताई ।।
'बाग बड़ौ छाया तुम लायक । सब ही संतनि कौं सुखदायक ।।
जे-जे साधु मंडली आवैं । वाही ठौर बहुत सुख पावैं ।।
महा इकांत फूल-फल पावहु । मग्न होय तहाँ हरि-गुन गावहु'।।
सुनतहि स्वामी भये प्रसन्न । भली बताई ठाँ[3] तुम धन्य ।।
हमकौं सकुच लगत तुम पास । हरिजन सुखी इकौसे[4] वास ।।
पहिलें तो सब संत पधारे । चौका आसन स्वच्छ सुधारे ।।
तब मुरलीधर जू पधराये । आम तरें रचि मंडप छाये ।।
सिंहासन विस्तार जु कीनौं । सेवा करि चरणोदक लीनौं ।

१ स्थापना करते थे । २ तरकीब । ३ जगह । ४ एकान्त ।

और भूत तौ खेलन गये । तीस प्रेत रखवारे छये ॥
आरति निरखि सुदन गति पाई । भये कृतारथ बार न लाई ॥
आये बेऊ गये जु सारे । उनि सँग धर्म-दूत रखवारे ॥
जब काहू के प्राणहिं हरैं । प्रेतनि में ह्वै ते संचरैं ॥
प्रेत कहैं हम दरसन लैहीं । जमगन ढिग[1] आवन नहिं दैहीं ॥
हा-हा-कार शब्द उन कीनौं । बोलि चतुर्भुज सब कौं लीनौं ॥
तुम हौ कौन सोर क्यौं करौ । कहि हैं सुनहु दुःख जो हरौ ॥
मरि-मरि धर्मराज कैं गये । कर्मनि बस जु प्रेत हम भये ॥
हम कौं जम यह ठौर बताई । सो तुम अबही लई छुड़ाई ॥
रखवारे किरतारथ[2] करे । हम ही पाप जोनि में परे ॥
प्रभु हम पर जु दया बिस्तरौ । नरक परे तिनकौं उद्धरौ ॥
जो तुम्हरौ चरणोदक पावैं । हौंहिं कृतारथ बार न लावैं ॥
हम तुम निकट न आवन पावैं । जो तुमकौं वृत्तान्त सुनावैं ॥
प्रभु इक गढ़हा[3] बड़ौ खुदावहु । सब संतनि के चरण धुवावहु ॥
पुनि अपनौ चरणोदक डारहु । तौ सब प्रेतनिकौं उद्धारहु ॥
पिछली रात सबै हम ऐहैं । वह जल लेत परमपद पैहैं ॥
ईहि बिधि हम किरतारथ ह्वै हैं । ये जमदूत सबै घर जै हैं ॥
सुनि उनकी तहाँ वासौ[4] दीनौं । सोई उपाय चतुर्भुज कीनौं ॥
पद-जल लै किरतारथ भये । धर्मदूत दौरे घर गये ॥
उनि जम सौं सब कथा सुनाई । भूत तरे भय भक्ति बढ़ाई ॥
दूरि रहे हम हरि भरमाये । अपराधी ढिग जान न पाये ॥
धर्मराज हू मन समझाये । तुम हरि-भक्तनि देखि न पाये ॥
तुम्हरे रहै पाप चढ़ि सीसैं । तातैं प्रभु के भक्त न दीसैं ॥
गये निकट बिनु भाग्य न पावै । इहि विधि जम दूतनि समुझावै ॥

---

१ समीप । २ कृतार्थ । ३ गढ़ा । ४ ठहरने का स्थान ।

प्रेत-भाग ते हरिजन आये । दरसन पुनि चरणोदक पाये ।
हरि-भक्तनि की महिमा ऐसी । मो पै कही परत नाँहि तैसी ॥
इतनि बात ह्यां क्यों करि जानी । बिनु पुरान कहि कौने मानी ॥
ताकी कथा सुनहु मन लाई । जातें सब सन्देह नसाई ॥
एक विप्र कौं जमगन रोखें । लै गये नरक और के धोखें ॥
वाकी आयु न पूरन भई । धर्मराज फिरि आज्ञा दई ॥
याकी देह न बिनसन[1] पावै । बेगि जाहु ज्यौं आयु बितावै ॥
शव कौं लोग जरावन लाग्यौ । उठ्यौ चितातें सोवत जाग्यौ ॥
इन द्विज प्रेतनि हू की कथा । सुनी तहाँ जमगन मुख यथा ॥
सो सब नगर-बगर नरनारी । पूछैं कहैं सो कौतुक भारी ॥
सकल प्रजा स्वामी पै आई । नाना दर्व भेंट बहु ल्याई ॥
लोगनि राजा सौं जु सुनायौ । सो स्वामी के दरसन आयौ ॥
भेंट भाव सौं बिनती करी । ताहू कौं जु भक्ति संचरी ॥
राजा भक्त भयौ जु अनन्य । त्यौं ही प्रजा भई सब धन्य ॥
तब तें बाग माँझ सब रहैं । रात-द्यौस कछु संक न गहैं ॥

दोहा—'भगवत' चत्रभुज चरण जल, लै-लै तरे जु भूत ।
बिना कृपा खाली गये, धर्मराज के दूत ॥

और सुनौं चत्रभुज की बातें । अन्तःकरन शुद्ध होइ जातें ॥
गढ़हा[2] देश सुदेशम(?) गाँऊ । भक्त निवास करैं तिहिं ठाँऊ ॥
तहाँ चत्रभुज सहित समाज । बिचरत भक्ति-प्रवर्त्तन काज ॥
नगर एक तहाँ सेवक भले । श्री हरिवंश-धर्म-मग चले ॥
चार महीना वरषा काल । स्वामी पधराये निज भाल ॥
कथा-कीरतन निसि-दिन भावै । बिमुखनि हू कै रुचि उपजावै ॥
एक द्यौस इक चोर जु नामी । सबकौं दुखद र उतपथ-गामी ॥

१ नष्ट होना । २ चतुर्भुदास जी का जन्मस्थान (गढ़ा)

साह जु एक हाटतें चल्यौ । ताकौं देखि चोर कलमल्यौ ।।
थैली तकी कंध पर जाके । लैकें भग्यो चोट दै वाकै ।।
सोर कियौ तिन, जन जुरि आये । राज-लोग तिहिं पाछैं धाये ।।
दब्यौ चोर बहु जीव छिपावै । इत-उत तकै शरन नहिं पावै ।।
तहाँ चतुर्भुज की जु मंडली । तामें कथा होत अति भली ।।
चोर भग्यौ चलि आयौ जहाँ । वाकौं बुद्धि फुरी इक तहाँ ।।
झटपट खोलि मिल्यौ साधुन में । थैली आगें दाबि वसन में ।।
पीछे भगे लोग बहु आये । देखि सभा सद आप लजाये ।
इत-उत ढूँढ़ि-ढाँढ़ि फिरि आवैं । या थल बिनु कहुँ खोज न पावैं ।।
भक्त-तेज डर कछु नहिं कहैं । सोचि-सकुचि निज मारग गहैं ।।
कथा प्रसंग सु पूरन भये । अपु-अपने आसन जन गये ।।
कथा माँझ यह भयौ प्रसंग । हरि गुरु शरनें पलटत[1] अंग ।।
कोटि जनम के पाप पहार[2]। शरणाये जरि होत जु छार[3] ।।
इहि, पर लोक, द्वीप पुनि खंड । ताहि न कोऊ दै सकै दण्ड ।।
जम डरपै, राजा इहि लोक । हरिजन कौं कोउ सकै न टोक ।।
जा दिन गुरु कौ पाछौ लयौ । प्राकृत तें अप्राकृत भयौ ।।
ये सब कथा चोर ने सुनी । भाग जगे कछु मन दै गुनी[4] ।।
लखि एकान्त चत्रभुज जहाँ । चोर नमित ह्वै आयौ तहाँ ।।
पाँइ परसि स्वामी सों बोल्यौ । उर कौ कपट कपाट जु खोल्यौ।।
अपुनौ सब विरतान्त सुनायौ । कह्यौ अबै तव शरनै आयौ ।
स्वामी जो तुम कथा सुनाई । सो यों ही है कहि समुझाई ।।
जो मैं अबहीं पाप कमायौ । पाछें हरि-गुरु सरनै आयौ ।।
सो तुम कही जनम भयौ और । निर्भय ह्वै विचरौ सब ठौर ।।
तव बचननि विश्वास जु आयौ । सिर कर धरौ, करौ मन भायौ ।।

---

१ नया जीवन मिलना । २ पर्वत । ३ राख । ४ विचार किया ।

तब स्वामी ने भद्र करायौ। न्हाइ तिलक निज भेष बनायौ॥
शिक्षा दै कैं नाम सुनायौ। तब कुकर्म करिबौ जु छुड़ायौ॥
विचरन लग्यौ करैं विश्वास। गुरु-गोविन्द की सांची आस॥
ढूंढ़त वह जाकौ धन लियौ। पहिचान्यौ,गहि अपुबस कियौ॥
पकरि लै गये राजा पास। नये भक्त कैं हिये हुलास॥
रोवै साह रु करै पुकारि। हरे रुपैया एक हजार॥
कालि सबनि के देखत लीन्हें। आजु स्वांग[1] धरि ढाँपत[2] चीन्हें॥

दोहा—राज-सभा में कहत यह, देह धरि न कछु लीन।
और जनम एसैं बहुत, किये कर्म मैं हीन॥

यह ऐसैं वह वैसैं कहै। न्याव न चुकै भेद को लहै॥
राजा कें बाढ़्यौ सन्देह। सांचौ है तौ फारौ[3] लेहु॥
इनहूँ फारौ लैनौ कह्यौ। कौतुक देखन जग उमह्यौ॥
पहिलैं हाथन सूत लपैट्यौ। घृत-जुत पीपर-पात चपैट्यौ॥
तापर लाल कुसौ[4] करि धर्यौ। इन गुरु-बचननि सुमिरन कर्यौ॥
जो प्रभु जन्म, भयौ पुनि[5] मेरौ। सब तजि शरण गह्यौ है तेरौ॥
यह कहि लियौ हाथ पर फारौ। सात पैंड चलि डार्यौ न्यारौ॥
फिरि उलतैं इत लै चलि आयौ। पातहु जर्यौ न पर्यौ पायौ॥
हाथ सूत दल नैंकु न जरे। शाह के हाथ फफोला परे॥
तापर राजा बहुत रिसायौ। मारौ याहि जु साधु सतायौ॥
साधु कहो याकौं जिन मारौ। यह साँचौ है मैं हूँ न्यारौ[6]॥
राजा कहै न्याव प्रभु, कीनौ। तो कौं दुःख बृथा 'इन' दीनौ॥
तब इन सब विरतान्त बखान्यौ। राज सभा जुत अचिरज मान्यौ॥
राजा चलि स्वामी पै आये। चारौ वरन दरश कौं धाये॥

---

१ नकली वेष। २ ढकता है। ३ परीक्षण, हाथ पर अँगारा रख कर। ४ लोहे का कुस। ५ दोबारा। ६ मैं भी सच्चा हूँ।

चरचा करि कैं होंहि प्रसन्न । राजा परजा भये अनन्य ।
घर-घर हरि-गुरु सेवा-पूजा । जुगल इष्ट बिन और न दूजा ।

दोहा—'भगवत' पारस परस तें, लोह कनक ह्वै जात ।
चत्रभुज के सँग चोर त्यौं, पलट्यौ प्राकृत[1] गात ।।

अब सुनि और बात अति आछी । ताके संत महत-जन साछी ।
तब स्वामी बिचरे वह देश । विमुखन कौ धन लैहिं न लेश ।
मारग में जल-कूप निहारें । काको दर्व लग्यौ सु बिचारे ।।
साकत-शैव जानि तजि देहिं । विमुखन कौ जल-अन्न न लेहिं ।।
जो ससल्य[2] की सत्ता जानैं । रहैं न तहाँ ते तुरत पलानैं[3] ।।
यह जस सुनै सु अचरज मानैं । अरु पुनि आपुन कौं घटि जानैं ।।
ऐसें बहुत किये हरि-भक्त । श्री राधावल्लभ सौं अनुरक्त ।।
एक द्यौस इक नगर पधारे । सुन्दर थल बहु द्रुम हरियारे ।।
देखि ठौर स्वामी ललचाये । स्वच्छ सरोवर मोर सुहाये ।।
ह्वाँ देवी कौ पण्डा रहै । 'ह्याँ मति उतरौ' वह यों कहै ।।
राजा चंडी पूजन ऐहै । भैंसा बकरन कौ बलि दैहै ।।
देवी बाकौं होत प्रतक्ष । तुम हू डरौ मानि मो सिक्ष[4] ।।
तब तौ स्वामी नैंकु न टरे । शक्ति तहाँ डेरा निजु करे ।।
पण्डा कहि सुनि रह्यौ खिसाई । हरि-भक्तन सों कहा बसाई ।।
शक्ति-स्वरूप[5] धरयौ कहुँ न्यारौ । धोइ लीपि थल स्वच्छ संवारयौ ।।
ओर-पास फिरि गई कनात । पंडा बाहर ही बिल्लात[6] ।।
दुख पावहि दुर्गाहि मनावै । मइया इनहिं जु हाथ लगावै ।।
सिंहासन मुरलीधर सोहै । तहँ दुर्गा रहि सकै सु कोहै ।।
प्रभु के तेज शक्ति थरहरी[7] । प्रतिमा उड़ी बाहरी परी ।।

---

१ मायिक । २ क्षुद्रदेवताओं का भजन करने वाले सकामी लोग । ३ चलेजाते थे । ४ शिक्षा । ५ देवी की मूर्ति । ६ बिल्लाता रह गया । ७ काँप उठी ।

अरु देवी की सब सामग्री । उड़ि-उड़ि परत बाहिरी सिगरी ॥
पंडा देवी के बल गाजै । सोई भक्त-डर घर तजि भाजै ॥
देवी कन्या के शिर आई । विथा आपनी कहि समुझाई ॥
भक्त-तेज हौं अति परजरौं[1] । जहाँ प्रभु तहाँ जाऊँ नहिं, डरौं ॥
हौं न सकौं स्वामी ढिंग जाइ । पंडा तू करि एक उपाइ ॥
मेरी ओर तें करि यह विनती । करौ शिष्य मोहि भक्तनि गिनती
तब स्वामी नें शक्ति बुलाई । देवी को आसय[2] शुभ पाई ॥
दिक्षा दे पुनि शिक्षा कीनी । तिलक प्रसादी माला दीनी ॥
जिव-हिंसा[3] अब तें मत करियौ । भक्तनि सौं अतिरति उर धरियौ ॥
स्वामी कही सु देवी मानी । तब मुरलीधर के ढिग आनी ॥
सात बरस की कन्या मुख ह्वै । शक्ति शिष्य भइ स्वामी पद छ्वै ॥
दिक्षा पंडा हू नें लई । क्षुद्र आस जनमन की गई ॥
अब यह शक्ति वैष्णव भई । प्रथम नृपति कौं दिक्षा दई ॥
राजा सोवत हो चित्रसारी । ताकी सिज्या औंधी मारी ॥
ता ऊपर आपुनि चढ़ि बैठी । तोहि निरवंश करनि हौं पैठी[4] ॥
नृपति कहै सुनि मैया मेरी । हम तौ सब अज्ञा में तेरी ॥
क्यों बिनु चूक हमैं संघारौ । कहौ सु करौं जु जीव उबारौ[5] ॥
देवी कहै भक्त मैं भई । चत्रभुज की दिक्षा है लई ॥
तू कुल-सहित शिष्य चलि होहु । तजि कुटुम्ब सौं ममता मोहु ॥
मेरे निमित जीव-बलि दैहै । ताकौ खरा-खोज[6] अब जैहै ॥
घर-घर भक्ति करावहि प्रेम । तौ करिहौं तोकौं शुभ-क्षेम[7] ॥
राजा के मन में दृढ़ आयौ । तब देवी नें मरत जिवायौ ॥
नगर मांझ डौंड़ी फिरवावहु । मोहि नारियर भेंट चढ़ावहु ॥
कही नृपति कीनी परमान[8] । देवी ह्वै गई अन्तर्धान ॥

---

१ जली जाती हूँ । २ मंशा । ३ जीव-हिंसा । ४ आई हूँ । ५ उद्धार करो । ६ नाम-निशान । ७ आनन्द-मङ्गल । ८ स्वीकार ।

जो कोउ मूढ़ जीव कौं मारै । ताके कुलहिं तुरत संघारे ॥
अजहूँ यहै रीति है उहाँ । चत्रभुज कौ परबोध[1] जु तहाँ ॥

दोहा—'भगवत' महिमा भक्त की, चत्रभुज करी प्रकास ।
तुच्छ किये साधन सकल, जुगल-चरन विश्वास ॥

अथ श्री सुन्दरदास जी कायस्थ की परचई

दोहा—श्री हरिवंश कुमार[2] कौ, सेवक सुन्दरदास ।
मन्दिर करि सनमुख रह्यौ, निरखे रास-विलास ॥

श्री हरिवंश सुधर्म उजागर[3] । सुन्दरदास कायथ भटनागर ॥
खानखाना[4] के हुते दिवान । अकबर शाह करैं सनमान ॥
तिनके राज सबै सुख पावैं । अप-अपने धर्मन सब ध्यावैं[5] ॥
सब राजन कौं अज्ञा दीनी । देवस्थल की रचना कीनी ॥
मन्दिर होन लगे सतपुरी[6] । प्रभु सौं प्रीति सबन की जुरी ॥

दोहा—गादी श्री हरिवंश की, बैठे श्री वनचन्द ।
(श्री) राधावल्लभ लाल की, वरषैं भक्ति अनन्य ॥

गोपालसिंह जादौं[7] तहँ आयौ । मन्दिर करन कौ हेत जनायौ ॥
तासौं श्री वनचन्द जु कही । मन्दिर तौ तुम करिहौ सही ॥
पै ह्याँ की इक बात अटपटी । सुनि कैं तुमकौं लगै चटपटी ॥
जब ठाकुर मन्दिरहि पधारैं । कर्ता मरै, बरस मधि तारैं[8] ॥
गोपालसिंह सुनि भयौ उदास । डरि उठि गयौ मरन के त्रास[9] ॥
पाछै मानसिंह नृप आयौ । मन्दिर करन वहौ ललचायौ ॥

---

१ शिला । २ श्रीगोपीनाथ गोस्वामी । ३ प्रकाशक । ४ अब्दुर्रहीम खानखाना, प्रसिद्ध हिन्दी कवि । ५ उपासना करते थे । ६ सातों वैष्णव तीर्थों में । ७ अकबर के मनसबदार । ८ एक वर्ष के अन्दर वह तर जायगा । ९ भय ।

ताहू सौं त्यों ही कह दयौ। सुनि राजा और ठाँ गयौ[1] ॥
मन्दिर-हित ह्याँ जे-जे आवैं। यहै बात वनचन्द सुनावैं ॥
आवैं बहुत सुनैं, उठि जाहिं। मरिबे ते सबही भय खाहिं ॥
एक समै सेवक निज रहै। सो गुरु[2] कौं पधरायौ[3] चहै ॥
बिनती लिखि पठवै बहु बार। आय न सकै बड़ौ व्यौहार ॥
प्रीति जानि तहँ गये गुसाईं। बाकी सब ही आस पुजाई[4] ॥
सुन्दरदास सुनी यह बात। गुरु-अग्रज[5] आये शुभ-गात[6] ॥
इनहूँ अपने घर पधराये। लाख रुपैया भैंट चढ़ाये ॥
कहन लग्यौ ये मुद्रा लीजै। प्रभु कौ राग-भोग सब कीजै ॥
वृन्दावन तें कहुँ न पधारौ। प्रभु-सेवा करि जीवन तारौ ॥
बिनती यहै मानि प्रभु लीजै। जो चहिये सो आज्ञा दीजै ॥
तासौं बोले श्री वनचन्द। सुनि रे महा मूढ़ मति मन्द ॥
प्रभु भक्तन के सदा अधीन। भये प्रीति बस बड़े प्रवीन ॥
सुधि कर जन प्रभु कौं जु बुलावैं। सब तजि हरि ताही छिन धावैं ॥
आरत,[7] जिज्ञासी जन कोई। हित बस जाहि बुलावै जोई ॥
प्रभु कौ सोइ सुभाव भगत कौ। विचरत कारज करत जगत कौ ॥
ज्यौं सूरज दिसि-दिसि तन फिरै। भय अरु तिमिर जगत कौ हरै ॥
ऐसैं ये विचरत हैं सन्त। तम-अज्ञानहिं हरत तुरन्त ॥
नर गृह अन्ध-कूप में परे। काल-व्याल तें नेकु न डरे ॥
तिनहिं दया करि काढ़त साध। सुख हरि-भक्तहिं देत अबाध[8] ॥
प्रभु-इच्छा करि प्रेरे जाहीं। ये तौ आप स्वतन्तर[9] नाहीं ॥
यह कहि आप चले उठि बन[10] कौं। ताकी भेंट न लीनी तनकौं[11] ॥

---

१ दूसरी जगह चला गया और गोविन्ददेव जी का मन्दिर बनवा दिया। २ श्रीवनचन्द्र गोस्वामी। ३ अपने घर बुलाना चाहता था। ४ पूरी की। ५ गुरु के बड़े भाई, गुरु श्री गोपीनाथ जी के बड़े भाई श्रीवनचन्द्र जी। ६ मङ्गल-स्वरूप। ७ दुखी। ८ निर्बाधरूप से, बिना रुकावट के। ९ स्वतन्त्र। १० वृन्दावन को। ११ थोड़ी भी।

खरचत दर्व न मन सकुचायो । तीन बरस मे सिद्ध करायो ।।
दुर्जन विमुखन बुद्धि उपाई । खानखाना सों चुगली खाई ।।
साहिब कौ धन बहुत चुरायो । वृन्दावन मन्दिरहिं लगायो ।।
खॉ ने[1] कही तू मेरा होई । ओछा काम न कीजै कोई ।।
ओछे काम न मोहि बड़ाई । जो चाहो सो लेहु मंगाई ।।
तब इन लिखी, पढ़त सुख पायो । भूषन पट अरु खरच पठायो ।।
दिव्य पांवड़े[2] डारे बाट[3] । मन्दिर करि बैठाये पाट[4] ।।
पट-भूषन सुठि दिव्य बनाये । दम्पति सम्पति करि दुलराये ।।
गुरु, गुरु-कुल की पूजा करी । संतन भेंट यथोचित धरी ।।
महोत्सव करि सब तुष्ट कराये । दुन्दुभि बहु बाद्यन्त्र बजाये ।।
धन्य-धन्य बोले सब कोई । जै-जै कार परम धुनि होई ।।
ऊनी[5] भई न कोई बात । पोखे व्रज छत्तीसौ जात ।।
अठपहरा कीरन्तन भयौ । गन्धर्व[6] गुनियन बहु धन दयौ ।।
एसें वर्सोत्सव सब साधे । पूरन कृपा करी तब राधे ।।
तब पुनि वहै बरस दिन आयो । नित विहार निजु धाम बुलायो ।।
चलतें गुरु-जन दरसन दियो । भेंट करी चरणोदक लियो ।।
बनी वृषभाननन्दिनी आज* । यह पद गावत सकल समाज ।।
हिय जुग[7] ध्यान करत मुख गान । करि दण्डवत तजे निजु प्रान ।।

---

१ रहीमखानखाना ने । २ पैर रखने के लिये वस्त्र । ३ रास्ता । ४ सिंहासन । ५ घटिया । ६ गानेवाले । ७ युगल का ध्यान ।

* बनी वृषभानुनन्दिनी आजु ।
भूषण वसन विविध पहिरे तन पिय मोहन हित साजु ।।
हाव-भाव लावण्य भ्रकुटि लट हरत जुवति-जन पाजु ।
ताल-भेद अवघर सुर सूचत नूपुर किंकिनि बाजु ।।
नव निकुंज अभिराम श्याम संग नीकौ बन्यौ समाजु ।
जै श्रीहितहरिवंश विलास-रास जुत जोरी अविचल राजु ।।
(श्रीहितचतुरासी—४८)

इहि विधि गुरु अरु इष्ट लड़ाये । दम्पति रीझे निकट बुलाये ॥
श्रीवनचंद सु आज्ञा पाई । संमुख सुष्ठु[1] समाधि बनाई ॥
चढ़ि सिंहासन प्रभु नित देखैं । सुकृत[2] फल्यौ रसभिल्यौ अलेखैं[3] ॥
यह धन कोटि अनर्थ करावै । विषै-भोग हित नर्क बसावै ॥
सो धन जो प्रभु के हित खरचै । हरि-मंदिर करि विधिवत अरचै ॥
तौ कुल सहित नर्क तैं निकसै । प्रभुकों निरखि कमल-सौ विकसै ॥
इहि विधि तन-धन अर्पन कीनौं । सुंदरदास प्रेम रँग भींनौं ॥

दोहा—एक प्रेम वश जुगलवर, करत मनोरथ सिद्ध ।
'भगवत् मुदित' रहैं सदा, प्रेम-भक्ति कृत बद्ध[4] ॥

अथ श्री खरगसैन जी की परचई

दोहा—श्री हरिवश कृपाकरी, घर ही में वैराग ।
रसिक अनन्य भयौ छयौ, जुगल रूप अनुराग ॥

खरगसैन काइथ गुनवंत । आवत जात रहत तहँ संत ॥
घर ही में पायौ वैराग । साधुनि सेवा परम सुभाग ॥
रसिक जननि कौ संग सुहायौ । तातैं गुरु-सरनाई आयौ ॥
इष्टधाम कौ भेद बतायौ । राधावल्लभ सौं मन लायौ ॥
माधौसिंह के हे परधान । स्वामि-काज में परम सुजान ॥
उत्तम नगर भानुगढ़ बास । साधु-समागम रहै निवास[5] ॥
कथाकीरतन हरि-गुन गान । आवैं साधु करै सनमान ॥
सेवा-सुमिरन नवधा वरषै । दुख-सुख लाभ-हानि सम हरषै ॥
तुष्ट रु पुष्ट इष्ट सौं भाव । महाप्रसाद विषैं दृढ़ चाव ॥
घर अरु बात न अपनी जानै । सुत-वित सब प्रभु ही कौ मानै ॥

---

१ सुन्दर । २ पुण्य । ३ अपार । ४ बँधे हुए । ५ घर में । ६ पूर्णतृप्त ।

आनँद मे सब काल बितावै। रूप-माधुरी नैन सिरावै॥
शीतल सहज सदा मृदु बैन। प्रेम-पराइन[1] पावैं चैन॥
राधावल्लभ नाम उचारैं। जस-कीरति गुण संत पुकारैं॥
एक दिना कसनी[2] कौ आयौ। राजा कौं लोगनि भरमायौ॥
यह कायथ दिन दर्व्य लुटावै। विना चुराये कैसैं पावै॥
पूछे लोभी मन की भूल। जिन कैं धर्म-लेस नहिं मूल॥
अपने सुख-सम्पति हरखाहीं। आन उदौ देखत मरि जाहीं॥
राजा सों कही दर्व तुम्हारौ। निधरक खरचै, तुमहि विचारौ॥
को सिर चढ़ै तुम्हारो प्यारौ। यातें बस नहिं कछू हमारौ॥
नृप सुनि कैं मन मांझ लुभायौ। खरगसैन कौं तुरत बुलायौ॥
तैं धन मेरो खायौ चोर। लैउँ डांड़[3] कै मारौं ठौर॥
लाख रुपैया दंड सुनायौ। खरगसैन फिर कहि समुझायौ॥
जो तुम दीनौ सो हम खायौ। राज-अंश कौं हाथ न लायौ॥
ठीक किये बिन दोस न दीजै। सत्य होय, भावै सो कीजै॥
सुनि कैं बन्धन-शाला दीनौ। भोजन जलहु मनै सब कीनौ॥
निरलोभी जन दुख क्यों पावैं। झूठे कौं प्रभु आप सतावैं॥
सोयो तब जमगन[4] ढिंग आये। महा भयानक लखि भय पाये॥
पकरि नृपति कों त्रास दिखाई। दुख की पासि[5] गुदी[6] में नाई[7]॥
दु:खित राजा करै विलाप। अन्तर कौ को मेटै ताप॥
कहनि लगे गन[8] भक्त सतायो। तातें जम ने हमें पठायौ॥
सब सम्पति प्रभु की कै जन की। तैं अपनी मानी या तन की॥
ताकौ फल तू ऐसौ पैहै। नरकनि परि जातना जु सैहै[9]॥

---

१ प्रेमपूर्ण। २ परीक्षा। ३ दंड। ४ यमदूत। ५ फांसी। ६ गर्दन। ७ डाल दी। ८ यमदूत। ९ सहन करेगा।

मृतक तुल्य मूर्छित भौ राजा। स्वाँस मात्र कछु सरै न काजा।
चुगल चाकरनि हू दुख पायौ। तब सब मिलि इक मतौ उपायौ[1]।
खरगसैन ही के अपराध। नृप लोगनि कौं भयौ विषाद[2]।
तब ही खरगसैन कौं लिये। पाँयन परे विनय बहु किये।
तीन दिना लों यह दुख पायौ। खरगसैन जू दरस दिखायौ।
देखत जम-गन गये पलाई[3]। सबनि लख्यौ नृप दियौ छुड़ाई।
लखि प्रभाव नृप गयौ लजाइ। तब उठि गहे भगत के पाँइ।
दरसन दै कैं काटी फाँस। तब राजा कैं भयौ विश्वास।
तब तें नृप नहिं इनहिं बुलावै। घर बैठें आपुन चलि आवै।
मन कौ धोखौ[4] दूर नसायौ। उलटौ चुगलनि पै दुख पायौ।
हरिजन दुःख न पावै कोई। जिनके श्याम सहायक होई।
तब तें खरगसैन कौं जानैं। प्रभु सम मानैं गुनन बखानैं।
प्रगटहि संत-प्रताप दिखायौ। राजा भक्त हौन मन भायौ।
इष्ट साधु गुरु लिये विचारि। भयौ भक्त नृप गुन सिरधारि।
श्री व्रजनाथ इष्ट उर धारे। सेवा-सुमिरन काज सँवारे।
भयौ उजागर[5] शरन जु आयौ। (श्री)राधावल्लभ सौं हित लायौ।
सत्‌संगति सौं सुधरैं लोइ[6]। सत्‌संगति सौं आनन्द होइ।
सत्‌संगति सब मंगल रूप। सत्‌संगति में सत्य-सरूप।
सत्‌संगति तें सुखनि प्रकाश। सत्‌संगति तें मन विश्वास।
सत्‌संगति गुन नाम उधारै[7]। सत्‌संगति नर उतरै पारै।
सत्‌संगति में रास-विलास। सत्‌संगति वृन्दावन-वास।
सत्‌संगति सुख में बरतायै[8]। सत्‌संगति तें नैन सिरायै।
तीनों पन सतसंग बितायै। खरगसैन चौथे पन आये।

---

१ एक युक्ति निकाली। २ दुख। ३ भाग गये। ४ भ्रम। ५ प्रसिद्ध
६ लोग। ७ प्रकाशित किये। ८ पहुँचा दिये।

बुधि इन्द्रीबल सरस सवाये । राधावल्लभ लाल लड़ाये ।।
सकल मनोरथ पूरे परे । तिन संगति ते औरौ तरे ।।
भक्त, 'भागवत' बोलैं साखि[1] । अपने कौं जु लैंहि प्रभु राखि ।।
(श्री) राधावल्लभ के गुन गावत । तनमय भये हार पहिरावत[2] ।।

दोहा—'भगवत' द्रोही निंदकौ, सदा करैं अपकार[3] ।
तिनहूं कौ सु दयाल ह्वै, संत उतारैं पार ।।

अथ श्री गंगा-यमुना बाई जी की परचई*

दोहा—श्री हरिवंश सरोज-पद, सरन भये जे जीय[4] ।
निर्भय इहि परलोक में, जुगल आपु बस कीय ।।

कामा[5] कौ जु मवासी ठाँव[6] । फौजदार चढ़ि मार्‌यौ गाँव ।।
बहुत लोग इत-उत के मरे । बहुतक भजे जमननि[7] तें डरे ।।
कन्या दोय बरस नौ-नौ की । भाजि दुरीं बन मारीं भौकी[8] ।।
रक्षा करि प्रभु नैं जु बचाईं । फौजदार के हाथ न आईं ।।
थर-थर काँपैं भूखी-प्यासी । कुटुम मर्‌यौ तातें जु उदासी ।।
सुन्दर बहुत हुतीं कुलहीन । महा दुखित रोवत अति दीन ।।
प्रभु जू ऐसी बात बनाई । वृद्ध वैष्णव नैं लखि पाई ।।

---

१ साक्षी । २ ठाकुर जी को हार पहिनाते हुए तन्मय होगये, शरीर त्याग दिया । ३ बुराई । ४ जीव । ५ डाकुओं का स्थान । ६ कामबन, ब्रज का एक गाँव । ७ मुसलमान । ८ भय ।

* श्री गंगा-यमुना बाई ने वाणी-रचना भी की थी, जैसा कि श्री ध्रुवदास के निम्न लिखित दोहे से प्रतीत होता है, किन्तु अब वह प्राप्त नहीं है ।

गंगा-यमुना तियन में, परम भागवत जानि ।
तिनकी बानी सुनत ही, बढ़ै भक्ति उर आनि ।। भक्तनामावली-९२

इन दुख पूछ्यौ उन सब कही। चलि बेटी मेरे घर सही॥
याकौ नाम मनोहर गुनी। तानन[1] करि मोहे, जिन सुनी॥
दोउ कन्या लैकैं घर आयौ। मथुरा बसि इनसौं मन लायौ॥
रागरंग गुन नृत्य सिखावै। भोजन-छाजन भले करावै॥
तान-ताल सुर भेद जनाये। हस्तक सुलप संगीत बताये॥
इन कन्यनि नीकौ मन दीनौं। पाँच बरस में सब गुन लीनौं॥
राग-रागिनी के सब भेदनि। जानन लगीं कहे जे वेदनि॥
मन इनके रस-रंग में भीने। गुन गन सब हस्तामल[2] कीने॥
जोबन हू नैं दई दिखाई। हाव-भाव गति सबै सुहाई॥
मनोहर के मन ऐसी आई। धन-संग्रह में मति ललचाई॥
इनकौं राज-द्वार में दीजै। दोइ हजार रुपैया लीजै॥
नाचि-गाइ बहु दर्ब कमायौ। राख्यौ गाड़ि न खरच्यौ-खायौ॥
कन्या चतुर रसनि की खानि। यह लोभी मूरख अज्ञान॥
दर्ब हेत आगरे सिधायौ। राजा मानसिंह पै आयौ॥
दर्ब लैन को मन में आस। विद्या-गुन कीन्हौ परकास॥
तब यह दास मनोहर गायौ। राजा सुनत बहुत सुख पायौ॥
तब इन कन्यनि कौ गुन कह्यौ। राजा हू कौ चित-मन उमह्यौ॥
राजा एक हजारहि देइ। यह द्वै तैं घटि दाम न लेइ॥
राजा कही बेगि लै आवहु। गुन अरु रूप हमें दिखरावहु॥
द्वै-हजार तैं अधिकौ दैहैं। जो उनकौ गुन लखि-सुनि लैहैं॥
तभी मनोहर मथुरा आयौ। माथौ दूख्यौ ताप सतायौ॥
धर्मदूत तब दई दिखाई। काल की पासि गुदी में नाई॥
वाकौ मरन समैं जब आयौ। गाड्यौ धन कन्याहि बतायौ॥
तीस हजार रुपैया कहे। आपु जाइ जम के घर रहे॥

---

१ गायन-कला। २ पूर्णरूप से प्राप्त कर लिये।

मृतक-दाह कन्यनि ही करचौ । और उचित विधिवत् अनुसरचौ ॥
कबहुँ-कबहुँ परमानँद जाते । राग-रंग सुनकै हुलसाते ॥
सुनतीं चरचा भक्ति-विराग । मरचौ मनोहर जाग्यौ भाग ॥
दुहुअनि मन में कियौ बिचार । मिथ्या मान्यौ सब संसार ॥
बालपने कौ दुख सुधि आयौ ।(अब)मरन मनोहरके दुख पायौ ॥
कीन्हौं निश्चय यह निर्धार । भजि राधावर हूजै पार ॥
परमानंद वचन उर आन्यौ । वृन्दावन कौं कियौ पयानौ[1] ॥
हित जुत परमानंद के पाँइ । गहि कें कही जगत्त छुड़ाइ ॥
लै आये जहाँ हुते गुसाईं । इनकी रीति-प्रतीति सुनाई ॥
प्रभु जू इन पर करुणा करौ । सिक्षा दै सिर पर कर धरौ ॥
अति प्रवीण श्रद्धा अति जानी । परमानंद नें कही सो मानी ॥
नाम सुनाइ[2] सुरीति बताई । सो सब इनकै निहचै[3] आई ॥
दिक्षा लेत परम सुख पायौ । अरु गुरु सौं यह वचन सुनायौ ॥
दर्व मनोहर नें जो दियौ । कथा सहित सुनिवेदन कियौ ॥
अज्ञा तिनकौं दई गुसाईं । हरि-हरिजन सेवा पधराई ॥
इष्ट-नाम सेवत जु उदार । धन खरचत लावैं नहिं वार ॥
उत्तम-उत्तम भोग लगावैं । सो सब संतनि कौं भुगतावैं ॥
बीन बजावैं सुंदर गावैं । सकल गुननिकरि प्रभुहि रिझावैं॥
तन-धन में नाहीं अभिमान । खरचैं प्रभु हित, प्रभुकौ जान ॥
भक्तनि सेवैं[4] मन हुल्लास । मिथ्या मानैं भोग-विलास ॥
हानि-लाभ चिंता नहिं करैं । दुख-सुख में न धर्म तें टरैं ॥
जीवन में प्रभु-सत्ता देखें । हरि-भक्तनि सौं प्रेम अलेखें ॥
नित्त-निमित्तिक उत्सव साधैं । धन खरचैं गुरुमत आराधैं ॥
कबहुँ मनोहर दई दिखाई । प्रेत-जौनि मथुरा में पाई ॥

---

१ गमन । २ मन्त्रदान करके । ३ निश्चय । ४ भोजन करातीं थीं ।

भली ठौर तुम दर्ब लगायौ । हरि, हरि-भक्तनि कौं भुगतायौ ।।
प्रेत-जोनि तें तुमहि छुड़ावहु । चरणोदक तुम अपनो प्यावहु ।।
तब दोऊ मथुरा में आई । जहाँ सुपन में ठौर बताई ।।
भक्तनि कौ चरनोंदक लीयौ । पाछैं अपनौ हू करि दीयौ ।।
भोजन-भोग तहाँ विस्तारचौ । प्रभु कीरतनि करि उद्धारचौ ।।
अजीजबेग[1] हाकिम सुधि[2] पाई । मनुष पठाये बेगि बुलाई ।।
इनकौ रूप देखि ललचायौ । दैंउँ महल में बहुत लुभायौ ।।
वा मलेक्ष के मन की पाई । अपने इष्टहिं सुमिरत बाई ।।
न्यारी इनकौं ठौर बताई । राखीं तहाँ, राति ह्वै आई ।।
पाछैं तहाँ यमन[3] यह आयौ । एक सिंह रखवारौ पायौ ।।
गरजि सिंह ने बहुत डरायौ । पिछले पायँ फिरचौ घर आयौ ।।
ताप चढ़ी मूरछा जु आई । महाकष्ट में रैन बिताई ।।
ये भक्तनि मिलि प्रभु गुन-गावैं । दुष्टनि कौं हरि हाथ लगावैं ।।
प्रात हीं वह हाकिम घर आयौ । माता कहि अपराध छिमायौ ।।
कथा सिंह की सोउ सुनाई । और भेंट बहु आनि चढ़ाई ।।
इन बाकौ धन हाथ न छियौ । हरि-भक्तनि हित शिक्षितकियौ[4] ।।
बार-बार पद-रज सिर लीनी । आदर सहित बिदा करि दीनी ।।
मातृ-भाव सम प्रीति दृढ़ाई । दुखद हुतौ सो भयौ सुखदाई ।।
पाछैं तें बहु भेंट पठाई । नाहिं न कीजौ मेरी माई ।।
राधावल्लभ भये सहाई । सिंह-रूप भये बुद्धि फिराई ।।
सो धन लयौ महोत्सव लायौ । वहै यमन सुख देखन आयौ ।।
धन्य-धन्य बोलैं सब कोई । सुनि-सुनि यमन प्रसन्न जु होई ।।
जगत विषैं उपज्यौ वैराग । हरि हरि-जन सौं जोरचौ राग ।।

---

१ मथुरा स्थित शासकीय अधिकारी, अकबर का कथित धाय भाई । २ खबर ।
३ यवन अजीजबेग । ४ शिक्षा दी ।

दोहा—सतसंगति तें उद्धरै, जिहिं-तिहिं विधि जो होइ।
'भगवत' यह निरधार है, संशै करो न कोइ॥

—————

अथ श्री हरिवंशदास जी कायस्थ की परचई

दोहा—श्री हरिवंश प्रताप तें, आयौ दृढ़ विश्वास।
हरिवंशदास कायथ रसिक, हरि-भक्तनि कौ दास॥

अब भक्तनि की निष्ठा कहौं। भूरि भाग्य तें यह मति लहौं॥
हरिवंश दास कायथ गुन गाऊँ। रसिक सभा में आदर पाऊँ॥
जा दिन तें गुरु-शरनैं आयौ। राधावल्लभ इष्ट सुहायौ॥
श्री गुरु मंत्र धर्म जब भाख्यौ। संतनि सेवा करि रस चाख्यौ॥
तिलक दाम के हाथ बिकायौ। चरनोदक प्रसाद नित पायौ॥
मिथ्या वाद दूरि करि नाख्यौ[1]। असद विवाद न मुख तें भाख्यौ॥
मन-बच-क्रम करि सेवा करैं। तन-मन-धन जन[2] आगें धरैं॥
दया भाव सब सौं अनुसरैं। दीन दुखित की पीड़ा हरैं॥
भूखे भोजन प्यासे नीर। नागे वसननि ढकैं शरीर॥
जथा जोग्य बहु आदर देंहिं। इहि विधि भक्ति करैं सुख लेंहिं॥
पुत्र-कलत्र[3] सबनि तें न्यारौ। श्रीराधावल्लभ लागै प्यारौ॥
अधिक आप तें सब कौं मानें। गुरु समान संतनि कौं जानें॥
अब सुनि अद्भुत एक चरित्र। तातें तन-मन होय पवित्र॥
कोइक[4] भक्त-भेष धरि आयौ। आदर करि आसन बैठायौ॥
मधुर वचन वह कथा सुनावै। कीरंतन करि चित्त चुरावै॥
हरिवंशदास के मन कौं भायौ। हित करि राख्यौ लाड़ लड़ायौ॥
वह सम्पति लखि कैं ललचान्यौ। ये अति सूधे मर्म न जान्यौ॥

———

१ फैंक दिया। २ भक्तजन। ३ पत्नी। ४ कोई एक व्यक्ति।

इक दिन उनहि रसोई करी । विष मिलाइ प्रभु आगे धरी ॥
सो प्रसाद सबहीं कों दीन्हों । कपट रूप किनहूँ नहिं चीन्हों ॥
अपनी पातर न्यारी राखी । प्रभु जानत सबहिय के साखी[1]॥
निरविष में विष मेल्यौ हरी । भोग लगी सो निरविष करी ॥
खातहि विष बौरानौं[2] वहै । हरिजन-द्रोही उल्टौ दहै[3] ॥
आई लहरि भूमि में गिरयौ । एक मुहूरत माहीं मरयौ ॥
हरिवंशदास अतिव्याकुल भयौ । प्रभु क्यौं भक्त बिछौहौ दयौ ॥
इनके संग भजन हम करते । सेवा सुमिरन कारज सरते ॥
कथा कीरतन में अति सूरौ[4] । अब कहाँ मिलै सबै विधि पूरौ ॥
काके संग भक्ति हम करैं । भवसागर उन बिन क्यों तरैं ॥
पश्चाताप बहुत जब कीनौं । सँग मरिबे को दावौ दीनौं[5] ॥
मन-वच-क्रम चरणन चित लायौ । प्रभु क्यों मोहि कलंक लगायौ ॥
भोजन तो सबहिनु मिलि करयौ । हम सब जिये भक्त क्यों मरयौ ॥
जगत कहेगौ इनही मारयौ । सो दुख कैसें जात निवारयौ ॥
हे प्रभु, अबकें याहि जिवावहु । कै या सँग मम देह छुड़ावहु ॥
सत्य बचन निष्कपट सुहाये । सुनि कैं प्रभु आपुन अकुलाये ॥
छिनक मांझ वह साधु जिवायौ । कियौ भक्त के मन कौ भायौ ॥
सोइ उठ्यौ मनौं नींद गँवाई । साधु संग तें सत् मति पाई ॥
तब उनि अपनी कथा सुनाई । मन कौ दुविधा दूर नसाई ॥
कपटी कपट कर्म मैं कीन्हौं । प्रभु कौ पथ मैं नेकु न चीन्हौं ॥
मैं विष डारि रसोई करी । सो प्रभु जू के आगे धरी ॥
अपनी पातर न्यारी राखी । जानत प्रभु सब ही की साखी ॥
भोग लग्यौ सो निरविष भयौ । विष कौ रस निरविष में गयौ ॥
खातहिं वार लहर मोहिं आई । धर्म दूत बाँध्यौ बरियाई[6] ॥

---

१ साक्षी । २ पागल होगया । ३ जलता है । ४ शूर, दृढ़ । ५ निश्चय किया । ६ जबर्दस्ती

बाँधि पासि जम पै लै गये । न्याइ सहित मुहि त्रास जु दये ॥
कपटिनु में लै ठाढ़ौ कीनों । तप्त कराह[1] तेल में दीनों ॥
महा जातना कही न जाई । देखौ सब जु पुरानन गाई ॥
देह अहं[2] जो दुख कौ मूल । छुटिबो कठिन कुसंग कुसूल[3] ॥
धृक-धृक ह्वाँ सब काहू करचौ। छल कौ फल दुख सहि नहिं परचौ ॥
जब तुम ह्याँ ते करुणा करी । धर्म राज के उर संचरी[4] ॥
वा कराह तें तुरत बुलायौ । तेरे मरें भक्त दुख पायौ ॥
अब तू गहि हरिजन के पाँइ । कियौ महा अपराध छिमाइ ॥
कपट बिना प्रभु सेवा करै । तब दुख-मय भव-सागर तरै ॥
ऐसे कहि मुहि दियौ पठाइ । तुम करुना करि लियौ बुलाइ ॥
अब में जन्म दूसरौ पायौ । करौ दास मोहि सरन जु आयौ ॥
सम्पति-लोभ कपट मैं कीनों । मो पर बीत्यौ सो कहि दीन्यौ ॥
बीस हजार बरष दुख भरते । जो प्रभु तुम ऊपर नहिं करते ॥
हरिवंश दास सुनि कीनी दया। दिक्षा दै अपनौ करि लया ॥
तब तें कपट तज्यौ उन साध । भक्ति करन लाग्यौ जु अवाध[5] ॥
दास्य करै गुरु-जूठनि खाइ । जिन जम घरतें लियौ मगाइ ॥

दोहा—द्रोह करै सो गनै न मन, आप करैं उपकार ।
'भगवत' एसे गुन अमित, लिखत होत विस्तार ॥

१ गरम कढ़ाई । २ घमण्ड । ३ काँटा । ४ प्रेरणा हुई । ५ बाधा रहित ।

अथ श्री जैमल जी की परचई

दोहा—श्री हरिवंश सुधर्म दृढ़, जैमल भक्त अनन्य ।
स्वारथ-परमारथ विषै, ता सम लख्यौ न अन्य ।।

जैमल भक्त राजरिषि भये । श्रीराधावल्लभ बस करि लये ।।
गुरु-ग्रन्थन कौ सदा विचार । हरि हरि-भक्तनि सेवा सार ।।
कथा कीरतन सुमिरन भाव । रासविलास महोत्सव चाव ।।
निसिवासर सत-संग सुहायौ । आनँद में सब काल बितायौ ।।
देह-ग्रेह कछु लगत न प्यारौ । पुत्र-कलत्र सबनि तें न्यारौ ।।
प्रभु कौं अर्पित तन-धन सर्बसु । तज्यौ अहंता ममता कौ जस[1] ।।
इक दिन पौढ़े हे निज घर महि । तहाँ विचारचौ परम सुधर्महि[2] ।।
प्रभु की सिज्या ऊँची चहिये । स्वामी सेवक सम[3] नहिं रहिये ।।
तब प्रभु कौ मंदिर बनवायौ । सौंनौ-रूपौ उचित लगायौ ।।
तहाँ एक चित्र सारी रची । चित्र विचित्र हेम[4] मणि खची ।।
तहाँ त्रिविध[5] नित पवन सु बहै । विविध सुगंध सु महकत रहै ।।
बन उपवन चहुँ ओर सुहायौ । मनु वृन्दावन प्रगट दिखायौ ।।
प्रभु की सिज्या सुठि सिंहासन । आरेनु[6] बारिनु[7] कंचन बासन ।।
राग-भोग रितु-रितु कौ जोग । समैं-समैं जु समर्पै भोग ।।
सेवा प्रगट अप्रगट[8] जु साधैं । करैं भावना जुगल अराधैं ।।
चढ़ैं निसैनी दारु[9] रँगाई । सेवा करि तब धरैं उठाई ।।
रानी हूँ यह भेद न पावै । देखन कौं नित मन ललचावै ।।
जैमल भक्तनि सौं बतरायौ । भाग खुले तिय औसर[10] पायौ ।।
निज संपति पति नहीं दिखाई । बहै सिढ़ी तिय तहाँ लगाई ।।

---

१ यश । २ धर्म के मर्म को । ३ समान । ४ सुवर्ण । ५ तीन प्रकार की, शीतल, मन्द और सुगंध । ६ आलों में । ७ खिड़कियों में । ८ मानसी । ९ लकड़ी की सीढ़ी । १० अवसर ।

तिहिं चढ़ि अगर[1] कपाट उघारे । कनक सेज पर जुगल निहारे ॥
काँती गौर स्याम पट झीने । झलमलात छवि भवन नवीने ॥
देखि छटासी छवि थहरानी । गिरत-परत उतरी वह रानी ॥
सिढ़ी उठाइ पहिलवत[2] राखी । समय पाइ पति सौं सब भाखी ॥
जैमल तासौं रिस करि बोले । तें किवार असमय[3] क्यों खोले ॥
मन में तिय कौ भाग्य सराह्यौ । प्रभु सनबंधी हेत निबाह्यौ ॥
एसें हि सदा भावना करें । गुरु-हरि-साधुनि कौं अनुसरें ॥
सात भोग सब आरति करें । सवा पहर लौं करि तब टरें ॥
ह्याँ तें निबरि सभा में आवें । सब क्षत्रिनु पै भजन करावें ॥
तुलसी के मनियान बिशाला । सबके करनि एक ही माला ॥
घरी चार लौं फेरनि पावै । जहाँ कौ तहाँ सुमेर जब आवै ॥
स्वारथ बात न मुखतें कहै । परमारथ में साँचौ रहै ॥
काल-कर्म सब शृङ्खल तोरी । श्रीराधावल्लभ सौं रति जोरी ॥
सुरत एक सेवा में साँची । हीरा हेम सहै ज्यौं आँची ॥
काँच कसौटी में नहिं आवै । केसर सम गेरू क्यौं पावै ॥
जैमल दया-धर्म में सूरौ । भूलि न बोलै मुख तें क्रूरौ[4] ॥
अस्सी बर्ष आरबल[5] बीची । दृष्टि रहै भक्तनि सौं नीची ॥
द्वेषी शत्रु सबै पचि हारे । श्रीराधावल्लभ से रखवारे ॥
तिन सौं राइ मडोवर वारौ[6] । राखै द्वेष, लरै तब हारौ ॥
इक दिन काहू भेद बतायौ । सेवा-सुमिरन ठीक सुनायौ ॥
सवा पहर सेवा अनुसरें । चार घरी सुमिरन सब करें ॥
ता बेर कोउ कछु कहै पुकारि । ताकौं जैमल डारै मारि ॥
चौदह घरी माँझ चढ़ि चलौ । नगरहिं घेर सबै दलमलौ[7] ॥

१ चन्दन के । २ जहाँ का तहाँ । ३ असमय में । ४ क्रूर, कठोर । ५ अवस्था । ६ मडोवर के राजा । ७ नष्ट कर दो ।

तबहिं राव के मन में आई। चहूँ ओरतें खेरि बुलाई ॥
घोरे दस हजार सँग किये। जोरि पयादे तिगुने लिये ॥
ताके सनमुख जात न हेरचौ। महा कटक लै कैं पुर घेरचौ ॥
जैमल सभा माल कर राजें[1]। इत राइ के दमामे[2] बाजें ॥
भय करि त्रस्त पुरी[3] जब भई। प्रजा सकल जैमल घर गई ॥
कोलाहल घर-घर भयौ भारी। डरपी जैमल की महतारी ॥
जैमल कौं तब रोइ सुनाई। सब की मृत्यु शत्रु कर आई ॥
सबै मड़ौवरिया चढ़ि आये। तुम जन-बंधु[4] भजन अटकाये ॥
वे आवत रावल[5] में धाये। ये अति दृढ़ कछु मनहिं न लाये ॥
जैमल कही मातु सौं शिक्षा। ह्वै है भली जो प्रभुकी इच्छा ॥
यह सुनि सबै गये मुरझाई। मृत्यु मानि नहिं करत उपाई ॥
निष्ठा लखि हरि-हिय अकुलायौ। तब जैमल कौ रूप बनायौ ॥
सज्यौ-बज्यौ[6] घोरौ घुरसाल। ता पर चढ़ि निकसे तत्काल ॥
बाग बाहिरे ह्वै हरि आये। देखि मड़ौवरियन भय पाये ॥
काल रूपधरि दरस दिखायौ। दसौं दिसा तें मारत आयौ ॥
कबहूँ एक अनेक ह्वै सूझैं। प्रभु कौ चरित न कोऊ बूझैं ॥
एक तीर सौं इक शत मारैं। कंपित ह्वै भगि चली गुहारैं ॥
बहुत मरे जे सनमुख भये। शस्त्रनि तजि भजि घर कौं गये ॥
तब प्रभु उलटि बाग में आये। फिरि देखे तो कहूँ न पाये ॥
यों अनन्य जनके बस स्याम। अपुनौं मानि करत सब काम ॥
नित्य नेम[7] करि जयमल निकसे। अतिहि प्रसन्न कमल से विगसे[8] ॥
तब लरिबे कों अश्व मगायौ। पहल राव कों मार भगायौ[9] ॥

---

१ हाथों में माला शोभित हो रही थी। २ नगाड़े। ३ भयभीत। ४ बधु-बन ५ महल ६ युद्ध के लिये सजा हुआ ७ नित्य का नियमित भजन।

तब वह बोल्यौ चिरवादार[1] । अब क्यों बहुरि होत असवार ।।
घोरौ गरम प्रस्वेद[2] चुचात । अचिरज मानत सुनि-सुनि बात ।।
जैमल बाग बाहिरें आये । रन कौं देखत विस्मय पाये ।।
जैमल के पाँचक असवार । पठये आये काज संवार[3] ।।
करि जुहार उनि बचन सुनाये । मारि शत्रु तुम बेगि भगाये ।।
जैमल बोले प्रभु रखवारे । सदा काज भक्तन के सारे ।।
सतजुग त्रेता द्वापर कलि माँहि ।उठि धावत भक्तन हित पल माँहि।।
पाण्डव अम्बरीष हित कीनों । उलटौ दुर्वासहि दुख दीनों ।।
द्रुपद-सुता की लज्जा राखी । गज अरु प्रहलादिक बहु साखी ।।
मोते भक्ति न कछु बनि आई । रीझे कौन बात सुनि पाई ।।

दोहा—भक्तन के दुख दुखी प्रभु, सुख सों सुखी सुजान ।
'भगवत' साँचे प्रेम वस, कहत जु वेद पुरान ।।

अथ श्रीभुवनजी कौ चरित्र

दोहा—सकल भुवन में भुवन सौ भक्त सुन्यौ नहिं कान ।
श्री हरिवंश प्रसाद तें जुगल बसे उर आन ।।

पिता भुवन के सूर प्रधान । बहुत करैं हरिजन सनमान ।।
राना जी के बन्धु समान । बड़े पटैत[4] तेजसी[5] जान ।।
श्री राधावल्लभ जी के सेवक । पत्नी-पति गुरु-धर्म जु खेवक ।।
तिनके-पुत्र भुवन इक भये । पिता सु देव-लोक कौं गये ।।
बारह बरस वयक्रम इनकौ । राना तोष कियौ[7] बहु तिनकौ

१ अश्व-पालक । २ पसीना । ३ बना कर । ४ कुशल योद्धा । ५ तेजस्वी ।
६ चलनेवाले । ७ संतुष्ट किया ।

सबालाख कौ पट्टौ दियौ । पितु कौ हौ सो सुत कौं कियौ ॥
माता भक्ति करैं चितलावै । श्री राधावल्लभ लाड़ लड़ावै ॥
भुवन अखेटक[१] खेलन जाइ । माता सुनि-सुनि बहुत रिसाय ॥
एकै पूत सो एसौ जायौ । महा निर्दई दई उपायौ[२] ॥
एसौ सुत हम कौं क्यौं दीनौ । हिंसक क्रोध लोभ में भीनौं[३] ॥
हरि-भक्तनि कैं मोह न कोई । प्रभु कौं भजै जो प्रीतम सोई ॥
यह कहि माता मोह मिटायौ । सुत-सनेह कौ लोभ न आयौ ॥
साकत[४] पुत्र न आवै काम । देखत दुख सहियत पलजाम ॥
इक दिन प्रभु ही ऐसौ कीनौं । तरकस डारि चोंखरेनु[५] दीनौं ॥
फैले तीर न किन्हूँ जाने । सुनि धुनि भुवन उठे भहराने[६] ॥
द्वै अंगुल पग भाल[७] जु गड़ी । पीर हौंन लागी अति बड़ी ॥
हाय माइ, कहि रोवत एसें । मातु आइ समुझावत तैसें ॥
रे कपूत, कायर क्यौं भयौ । जन्म स्याम छत्री कुल दयौ ॥
दया धर्म में रहै सपूत । जीवनि पीड़ा देइ कुपूत ॥
पर दुख देंहिं तेई दुख पावैं । सब में प्रभु यह वेद बतावैं ॥
काहू जीवहिं दुःख न दीजै । देह दई ताकौं भजि लीजे ॥
कछु आई मन कछू न आई । तनक रही मन बहुत घटाई ॥
इक दिन राना चल्यौ शिकार । संग भुवन हू लियौ पुकार ॥
वन में हिरन भजे निज जोरे[८] । सब अप-अपने छोरे घोरे ॥
सब उलटे[९] मृग माल[१०] न पाई । भुवन एक हरिनी जु दबाई[११] ॥
यद्यपि माता बहु समझायौ । पै क्षत्रिनु सँग मन ह्वै आयौ ॥
दई मृगी कै इन तलवार । गाभ[१२] सहित कीने द्वै फार[१३] ॥

---

१ शिकार । २ देव ने बनाया । ३ भीगा हुआ । ४ हिंसक । ५ चूहोंने । ६ घबड़ाये हुए ।
७ तीर की नोक । ८ अपने जोड़े के साथ । ९ वापस आ गये । १० हिरनों का समूह ।
११ पीछा किया । १२ गर्भ १३ दो टुकड़े ।

तब लखि मन उपज्यौ निरवेद[1]। व्याकुल ह्वै कीन्हौं बहु खेद ।।
आइ माइ के पग परि रह्यौ। सब वृत्तांत मृगी कौ कह्यौ ।।
माता अब मन में यह ल्यावहु। चलि वृन्दावन दिक्षा द्यावहु ।।
यह सुनि माता बहुत सिहाई[2]। श्रीवनचंद पै दिक्षा द्याई ।।
सुमिरत मंत्र भयौ बैराग। यहै चाकरी दीजे त्याग ।।
माता सौं निज मतौ विचारयौ। अपनों परम धर्म उच्चारयौ ।।
जो माता तरवार न बाँधें। हरि-गुरुजन सेवा क्यौं साधें ।।
यह करिये हिंसा नहिं होई। पूजे बिन जन जाइ न कोई ।।
तब तरवार काठ की करी। मूठ सुभग कंचन नग जरी ।।
केतिक दिन इहि भाँति बिताये। इक दिन खोलि सरोवर न्हाये ।।
तिहिं ठाँ हुते बहुत रजपूत। कर लै देखत एक कपूत ।।
काढ़ि म्यान तें न्यारी करी। द्वैकनि[3] लखि त्यौंही करि धरी।।
राना जी सौं दुहुनि सुनाई। भुवन दारु तरवार बनाई ।।
ये चाकर सब में सरदार। बाँधै सदा काठ हथियार ।।
बहु दिन करी चुगलि इन दोउन। राना नें उर धरी सु कोउन ।।
कहत-कहत जब लये उकताइ[4]। देखन कौं मिलि कियौ उपाइ ।।
चौकी[5] के दिन जब यहाँ आवैं। तब यौं कहैं जु खबर न पावैं ।।
प्रातहिं गोठ[6] बाग में कीजै। राग-रंग करि सब सुख लीजै ।।
यौं ही करी भुवन जब आयौ। लियौ संग करि बाग सुहायौ ।।
राग भोग पान पकवान। निर्तक नट सब कौ सनमान ।।
बैठी सभा सबै मिलि आई। राना नै इक बात उठाई ।।
अप-अपनी तरवार दिखावहु। अरु वाके गुन नाम बतावहु ।।
पहिल आपुनी काढ़ि जु लीनी। देखन रजपूतनि कर दीनी ।।

---

१ वैराग्य। २ प्रसन्न हुई। ३ दो व्यक्तियों ने। ४ परेशान कर लिये
५ महल पर पहरा। ६ प्रीतिभोज।

क्रम सौं सबनि काढ़ि दिखराई। चली जु बात भुवन पै आई ॥
कही भुवन तुम हूँ जु दिखावहु। अरु याकौ गुन मोल बतावहु ॥
भुवन भक्त झूंठ तें डरे। ज्यौं कछु ही त्यौं हीं उच्चरे ॥
कह्यौ चहत यह अहै दारु की। प्रभुमुख निकसाई जु सार[1] की॥
सकुचे नही प्रसन्न सदाई। निधरक ह्वै तरवार दिखाई ॥
तुरत म्यान तें काढ़ि जु लई। प्रभु करि दामिनिसी दुति[2] भई॥
ताकौ तेज सह्यौ नहिं परै। राना सकल सभा जुत डरै ॥
तब राना वे चुगल बुलाये। गरदन मारौ दुष्ट महा ये ॥
इन कौ घर-धन सब हरि लेहु। कुटुम्बहिं देस-निकारौ देहु ॥
भुवनहिं दया चुगल की आई। राना सौं सब कथा सुनाई ॥
प्रभु की माया जगत नचावै। प्रभु की इच्छा सौं बनि आवै॥
सब के हिय में वे भगवान। भली बुरी के प्रेरक जान ॥
तातें इन कौ दोष न कोई। साँची बात कही इन सोई ॥
मेरे मन बैराग सुहायौ। कपट शस्त्र[3] बाँधि कै आयौ।
प्रभु पंचन में राखी लाज। सब ही भाँति संवारे काज ॥
सत्य बचन कहि चुगल बचाये। भुवन भक्त राना मन भाये ॥
पट भूषन हय[4] गय धन दीयौ। पट्टौ देस सबायौ कीयौ ॥
'ठाकुर भक्तन के हित लीजै। घर बैठे प्रभु-सेवन कीजै' ॥
पहर एक सेवा मन धरैं। तब जुहार राना कौं करै ॥
पहिलैं परमारथ चित लावैं। पाछैं स्वामि-काज उठि धावैं ॥
महा सूर सब मानैं कान[5]। राना बहुत करै सनमान ॥

दोहा—भुवन भावना में सुदृढ़ रहैं एक रस नित्त।
'भगवत' माता के कहे राख्यौ प्रभु में चित्त ॥

---

१ लोहे की। २ प्रकाश। ३ झूठा हथियार। ४ घोड़े। ५ मर्यादा।

अथ श्री जसवन्त राठौर जी की परचई

दोहा—अब सुनि हित हरिवंश के, कृपापात्र इक साध।
निष्ठा गुरु हरिभक्त में, जाकौ मतौ अगाध॥

जसवंत भक्त हुते राठौर। जिनकी कथा सबनि सिरमौर॥
जा दिन गुरु शरनाई आयौ। असत्[1] जानि सब धर्म[2] विहायौ[3]॥
सत्य अनन्य धर्म पहिचान्यौ। श्री राधावल्लभ जी उर आन्यौ॥
गुरु-सेवा सौं अति अनुराग। साधु सेइ करि मानैं भाग॥
वृन्दावन में मन्दिर कीयौ। संपति खरचि अतुल सुख लीयौ॥
नस्वर मानैं अपनौं देह। तिलक-माल सौं सदा सनेह॥
रावल[4] में संतनि पधरावैं। चरनोदक जूठनि लै पावैं॥
स्त्री-सुत अरु बंधु आदि जे। भक्तनि आगे टहल करें ते॥
गुरु-साधुनि सेवा यौं ठानैं। तन-धन-जन सब प्रभुकौ मानैं॥
भक्तनि आगे सर्वसु धरैं। अहंता ममता कबहुं न करैं॥
दान संकलप करि नहिं देइ। लैन-दैन प्रभु कौ गनि लेइ॥
स्वामि-काज में साँचौ रहै। ऊनी[5] बात न मुखते कहै॥
पुत्र-कलत्रनि सौं नहिं मोह। मनहूँ करि नहिं जिव[6] सौं द्रोह॥
दुख-सुख लाभ-हानि सम मानैं। हरि-हरिजन में भेद न आनैं॥
काम-क्रोध मद-मत्सर लोभ। मोहादिक करि सकत न छोभ[7]॥
अति उदार ह्वै खरचै दाम। आवैं संत करैं विश्राम॥
ठग इक भक्त-भेष धरि आयौ। मिलि जसवंत परम सुख पायौ॥
आदर भाव बहुत विधि कीनौं। सेवा-सुश्रूषा मन दीनौं॥
मगन होइ वह हरि-जस गावै। प्रगट भक्त के चिन्ह दिखावै॥
मानौं परम साधु यह आयौ। कपट भेष काहू नहिं पायौ॥
पुत्र एक जसवंत के घरै। रूप गुननि जुत चितकौं हरै॥

---

१ मिथ्या। २ कुलधर्म आदि। ३ छोड़ दिये। ४ महल। ५ ओछी
६ जीव ७ क्षोभ

बहु विध आभूषन नग जरे। मुक्तनि माल हार उर धरे ॥
कंचन पहिरें तोले तीस। ठग कौं भरमायौ[1] जगदीस ॥
बालक सौं कीन्हौ अनुराग। सँग लै जाइ दिखावै बाग ॥
बहुत भाँति जु खिलावैं खेल। बालक नें कीनौं मन मेल ॥
एक दिना वन में लै गयौ। कुँवरहि हत[2] गहनौं सब लयौ ॥
गहनौं लै कैं चल्यौ पलाइ। मग जसवंत मिले सतभाइ[3] ॥
जसवंत कौं देखत सकुचानौं। पाप किये ते वदन[4] सुखानौं ॥
जसवंत कही घर चलौ प्यारे। भये उदास फिरत क्यौं न्यारे ॥
कौंन बात महाराज रिसानें। कहौ कृपा करि हम हूँ जानें ॥
कै घर अज्ञा किनहुँ न मानी। कै कोउ बोल्यौ कर्कस[5] बानी ॥
तुम सँग भजन होत है आछैं। हम सब पेट भरत तब पाछैं ॥
ऊतर न आवै काँपै गात। मुख सौं कहत अटपटी बात ॥
तब ताकौं सँग लै घर आये। पाँइन परि अपराध छिमाये ॥
संध्या भई कुँवर नहिं आयौ। ढूँढ़त जित-कित किन बिरमायौ[6] ॥
बहुरि नगर में डौंड़ी फेरी। वन-उपवन सब ही ठाँ हेरी ॥
हारे हेरि कहूँ नहिं पायौ। इक फकीर तिन भेद बतायौ ॥
तुम्हरे महल रहै बैरागी। ताकौं यह दुरमति है लागी ॥
उन गाड़यौ है बालक मारि। पहिलैं गहनौं लियौ उतारि ॥
बालक ह्वाँ तें काढ़यौ मरयौ। जसवंत देखि सोच में परयौ ॥
परमारथ हित उपजो संक। सब साधुनि कौं होत कलंक ॥
तब तौ उलटि फकीरहि धरयौ[7]। यह कुकर्म तौ तैं ही करयौ ॥
साधुनि सौं यह क्रिया न होई। तैं ही मारि बतायौ सोई ॥
जो तू अपुनौं जीयौ चहै। तौ यह बात कहूँ मति कहै ॥
जीव बच्यौ बिनती करि हारयौ। भक्तद्रोह लखि देस निकारयौ ॥

---

१ भ्रम में डाल दिया। २ मार कर। ३ शुद्ध भाव से। ४ मुख। ५ कठोर।
६ रोक लिया। ७ पकड़ लिया।

ठगनें सुनी बात सिर आई। गहनौं लै फिरि चल्यौ पलाई ॥
उततें आवत हे जसवंत। मध्य मिल्यौ ठग बगवत[1] संत ॥
देखि डरयौ वह अति हीं लज्यौ। गहनौं डारि हारि सो भज्यौ ॥
जसवंत कहैं न एसी कीजै। याके संग और कछु लीजै ॥
भयौ न मो मन तुम सौं भंग। चलौ जगत-गुरु मेरे संग ॥
बालक हुतौ तुम्हारौ दास। बाकी इतनी ही आयु रु स्वांस ॥
जो देही धरि कैं जग आयौ। थिर करि कोई रहनि न पायौ ॥
प्रभु अरु प्रभु के भक्त समान। यह सब कहत जु वेद पुरान ॥
तुम हीं सृज[2] पालक संहारौ। तुम हीं स्वर्ग-नर्क में डारौ ॥
तुव कर मरयौ परमगति पाई। को करि सकै भाग बड़याई[3] ॥
मन को धोकौ देहु नसाइ। अब सु पधारौ गृह सत् भाइ ॥
चरन सीस धरि गृह लै आयौ। अधिक पहिल तें हेत लगायौ ॥
घर में सब सौं कथा सुनाई। अपनी सी परतीति[4] बढ़ाई ॥
गहनौं लै वा आगे धरयौ। परिकरमा करि पाँइन परयौ ॥
इकसत मुद्रा और मँगाये। मन उदार करि भेंट चढ़ाये ॥
तब वा ठग कैं भक्ति प्रकासी। दीन भयौ दुर्मति सब नासी ॥
कहनि लग्यौ अब हौं कित जाऊँ। मोकौं और न दूजौ ठाऊँ ॥
अब हौं अपने मन की कहौं। चरन पकरि चेरौ ह्वै रहौं ॥
तब वह करुना करि दुख पावै। शुद्ध बुद्धि अपराध छिमावै ॥
साँच्यौ लख्यौ भक्ति-विश्वास। जसवंत गये त्रिया के पास ॥
यह तौ साधु हमैं अति भावै। मत कबहूँ याहि वह सुधि आवै[5] ॥
तातें कन्या याकौं दीजै। स्वारथपरमारथ सुख लीजै ॥
घर कौ भेद सबै यह जानैं। तब हौं ये अपुनौं भ्रम भानैं[6] ॥
तियहा कहो मोहू मन आई। तुरत साधु सौं करी सगाई ॥

---

१ बगुले के समान। २ सृष्टि बनाने वाले। ३ बड़ाई। ४ विश्वास।
५ बच्चे के मारने की याद ६ नष्ट करेगा

प्रभु तब जानी साँची निष्ठा। देह-ग्रेह की नेकु न चेष्टा
तब प्रभु बालक मर्‌यौ जिवायौ। भोर भयें खेलत चलि आयौ।
पहिलें वाही साधुहिं मिल्यौ। बालकाल सौं जासौं हिल्यौ।
बालक कछू न जानैं भेव[1]। ऐसे चरित करे हरिदेव।
नित ही सोइ उठत हौ जैसें। भूषन बसन सम्हारत तैसें।
जसवंत घर तें बाहर आयौ। बालक संग भगत के पायौ।
जसवंत कही कहाँ तू रह्यौ। 'भक्त खिलायौ', बालक कह्यौ।
बालक कौं लै घर में आयौ। माता नें उठि कंठ लगायौ।
बालक कौं पूछैं फुसलावैं। हँसि-हँसि परै, कछु न सुधि पावै॥

दोहा—'भगवत मुदित' सदा रहैं, हरि हरि-भक्त समान।
सुत हंतहि लखि सुता दै, कीनौं अति सनमान॥

अथ श्री लालस्वामी जी की परिचई*

दोहा—सुत श्री हित हरिवंश के गोपीनाथ उदार।
तिनके शिष्य प्रसिष्य वहु करे जी चभव पार॥

प्रथम राधिका वर कौ मन्दिर। देवन माँहि सकल सुख-कन्दर[2]॥

---

१ भेद। २ सुख का मूल।

* लालदास स्वामी सरस, जाकैं भजन अनूप।
बरन्यौ अति दृढ़ अक्षरनि, लाल लाड़िली रूप॥
—हित ध्रुवदास—भक्त नामावलि—५२

बाँकौं विपिन-विलास बंक जस बरन्यौ जाकौ।
जिहि मग औघट घाट बंक ही चलन तहाँ कौ॥
कहनी रहनी बंक बंक बोलन रसमाती।
निरखत बंक बिहार छके छबि में दिनराती॥
सुदृढ़ प्रीति हित-नाम सौं हरिगुरु संतन चरण-रति।
बाँके अनन्य हितधर्म पथ स्वामीलाल गंभीर मति॥
—चाचाहित वृन्दावनदास रसिक अनन्य परचावलि ११४

सेवत इर्ष्टाहं रसिक-सिरोमनि । भक्तिप्रवंसकत्रिबिधितापहन्नि[1]॥
रसिक अनन्य धर्म प्रतिपालक । कर्मठ शठ कुटिलन घरघालक ॥
राग-भोग आरती सब साधैं । यह विधि अपने इष्ट अराधैं ॥
लालदास द्विज-कुल उतपन्न । करत आमिली[2] गुन-सम्पन्न ॥
सिकरा लै खेलैं जु शिकार । नख-सिख सब क्षत्री आकार ॥
परमारथ में दीखत हीन । हैं व्यवहार क्रिया परवीन[3] ॥
इक दिन देवन माँझ जु आये । स्वारथ बँधे पहर ठहराये ॥
मंदिर समय भई शृङ्गार । बजे मृदंग झल्लरी तार ॥
पुर के लोग दरस कौं धाये । अप-अपने उद्यम[4] तजि आये ॥
नरनारी देखे जब चले । 'लाल' संग कौतुक हित मिले[5]॥
गोपीनाथ आरती करैं । जो देखै तिन कै मन हरैं ॥
गौर वरन छबि नैंन विशाल । केश सगवगे तिलक सु भाल ॥
मुक्तमाल उर तुलसी माल । कुण्डल कटक मुद्रिकनि[6] जाल ॥
या छबि सौं आरती उतारैं । त्यौं-त्यौं निरखि प्रान सब वारैं ॥
लालदास कौ मन हर लयौ । देखि सरूप चित्र सौ भयौ ॥
देह-गेह सुधि-बुधि बिसराई । इकटक रह्यौ कह्यौ नहिं जाई ॥
आरति लखि सब घर कौं गये । लाल पकरि कौनौं छकि छये ॥

दोहा—अति सुगंध हरिवंश तनय, मलयागर[6] कौ बूट[7] ।
'लालदास' ढिग गहि रह्यौ, या मंदिर कौ खूट[8] ॥

अवर संग के सबै बुलावैं । सेवक सुहृद सखा समुझावैं ॥
ये काहू कौ तनक न मानैं । पगन गुँसाई के लपटानैं ॥
देखि सुरूप भक्ति उर आई । पिछली अपनी कुमति सुनाई ॥
तच्छिन एक कवित्त बनायौ । तब तौ गुरु कौ चित्त चुरायौ ॥

१ नष्ट करने वाले । २ अमलदारी । ३ प्रवीण । ४ काम काज । ५ तमाशा देखने के लिये ६ अँगुठी ७ चदन द्रुक्षा ९ कौना

कवित्त—वरणाश्रम धर्म रु कर्म किये बहु जन्मनि भोग-विषै अनुराग्यौ।
स्वर्ग रु नर्क बस्यौ निकस्यौ चतुरासिये जोनि के मारग लाग्यौ॥
'लाल' सुकृत्य[1] फल्यौ नहि जानिये साधुनि संगतें भाग सुजाग्यौ।
कौन फिरै सठ सूद्रनि सेवत श्री हरिवंश-तनय तन दाग्यौ[2]॥

कृपा करी गुरु दीक्षा दई। रीति भाँति पद्धति सुनि लई॥
भये अनन्य उपासिक कैसे। समता कौं पैयत नहिं एसे॥
तन-मन-धन सब अर्पन कीनौं। ममता-मोह सबै तजि दीनौं॥
संतनि कौ निज वेष बनायौ। पहिलौ सब आचरन विहायौ[3]॥
गुरु-हरि सेवा सौं चित लायौ। तब तौ 'स्वामी' आपु कहायौ॥
'लाल' करत प्रभु भोग-भावना[4]। कहन-सुनन कौ जहाँ दावना[5]॥
खटरस बिंजन लै-लै आवैं। गुरु आगे धरि भोग लगावैं॥
मोदक मगद[6] लैन कौं धाये। ताही छिन गुरु टहल पठाये॥
एक रुपैया कौ पट मिहीं[7]। लावहु बेगि अंगौछा नहीं॥
ये दोड़े लडुवा लै आये। देखि गुँसाई विस्मय पाये॥
हम तौ प्रभु हित वसन मगायौ। तू मोल के मोदकनि लायौ॥
जब गुरु लालहिं सौंह[8] दिवाई। तब सु भावना सबै सुनाई॥
यौं तनमय ह्वै भोग लगायौ। सो सब गुरुन थार में पायौ॥
भोग धरयौ कछु जो बनि आयौ। व्यंजन घृतपक[9] अधिक जु पायौ॥
तब तें गुरु अति गौरव राखैं। दुरी बात हिय की सब भाखैं॥
यह सुनि कुटुम सबै चलि आयौ। इनि सबहिन कौं शिष्य करायौ॥
गुरु-अज्ञा तें घर कौं गये। हरि-हरिजन कौं सेवत भये॥
इष्ट-भावना निशि दिन करैं। गुरु-पथ पाँव अगमनों धरैं॥
दंपति-संपति केलि निहारैं। सोइ पद रचना करि उच्चारैं॥
श्री हरिवंश-प्रताप बखान्यौ। गुरुकुल कौं प्रभु सम करि मान्यौ॥

---

१ पुण्य। २ चिन्हित कर दिया। ३ छोड़ दिया। ४ भावना में भोग लगाते थे। ५ [illegible]। ६ बेसन के लड्डू। ७ महीन वस्त्र। ८ शपथ। ९ घी में पकाहुआ।

नित्यनिमित्तिक लीला खेल । कवितनि करि बरनी कलकेल[१]॥
साधु-संत जे घर चलि आवें । प्रीति सहित तिन कौं भुगतावें[२]॥
इक दिन तिया परोसत भई । खीर संत कौं थोरी दई ॥
पति कें घृत-जुत अधिक परोसी । स्वामी कौं दुविधा[३] यह दीसी[४]॥
अपनी ही सो उनकौं दीनी । उनको थारी आपुन लीनी ॥
तिया कही यह उनकौं करी । यह तुम कौं भरि थारी धरी ॥
'तोकौं पति प्यारौ है जैसौ । मेरौ पति मोहि लागत तैसौ' ॥
ऐसे स्वामी कहि सकुचाई[५] । स्वामिनि तब तें प्रकृति जु पाई॥
भक्तनि सरस प्रसाद जिमावहिं । रूखौ-सूखौ आपुन पावहिं ॥
और सुनौं गुन स्वामी जी के । परम भाँवते[६] रसिकनि ही[७] के॥
जब-जब प्रभुकौ उत्सब आवै । सब खरचें कछु रहनि न पावै ॥
आनँद मगन न देत अघाई । इक-इक धोती ही ठहराई ॥
सेवक-सिष्य जु भेंट चढ़ावें । सो सब प्रभु के नेग लगावें ॥
काहु न जाचें ऋण नहिं करें । प्रभु आगे घर होइ सो धरें ॥
स्वामी कै इक बालक सुंदर । आवें ज्ञात[८] सगारथ[९] कौं घर ॥
इक ब्राह्मण नामी बहु धनी । उनि स्वामी की कीरति सुनी ॥
निज कन्या लखि बर कौं जोग । घर-वर देखन पठये लोग ॥
अति प्रसिद्ध स्वामी घर आये । बैठक माँझ साधु दरसाये ॥
खबर भई वर देख्यौ चाहैं । बैठाये ते संत जहाँ हैं ॥
हरिजन हेत रसोई करी । दर्व्य हीन[१०] प्रभु आगे धरी ॥
स्वामी बाहर तें घर आये । देखे साधु दसक हैं छाये ॥
जने चार ब्यौहारी॰ जाने । तेऊ अभ्यागत[११] करि मानें ॥
प्रभु पौढ़े जन[१२] जेंवन आये । तिनके संग बेऊ[१३] बुलवाये ॥

---

१ क्रीड़ा । २ भोजन कराते थे । ३ भेदभाव । ४ दिखलाई दिया । ५ लज्जित करदी । ६ प्रिय । ७ हृदय । ८ जाति वाले । ९ विवाह-सम्बन्ध । १० कम लागतवाली सामग्री । ११ अतिथि । १२ भक्तजन । १३ वे लोग जो वर देखने आये थे ।

स्वामिनि कही साधु ही पावैं। इनके पीछैं उनकौं ज्यावैं[1] ॥
ये कहैं अतिथि आस करि आवैं। तिन बैठे हम कैसें पावैं ॥
अहो, वर देखन आये लोग। पीछे निखरौ[2] लगि है भोग ॥
तब तौ स्वामी बहुत रिसाये। तिय कौं अति अपराध लगाये ॥
क्यौं जू प्रभु कौं रूखी-मीसी[3]। समधीजन हित पूरी दीसी ॥
हरिजन तें बड़ मानैं माइक[4]। निकसि नहीं तू सेवा-लायक ॥
स्वामिनि कौं पाक तैं उठायौ। तच्छिन एक कवित्त बनायौ ॥

सुन्दर प्रकार रचैं मोदक मधुर वर,
उज्जवल ज्योंनार जग करत जमाई कौं।
भवन भंडार आनि भूषन बसन बानि,
बहु पकवान थान[5] भामिनी[6] के भाई कौं ॥
अमित पतित जोइ निमित न जानें कोइ,
अधिक रसोई करैं समधी के नाईं कौं।
'लाल' भनि गज-रद[7] द्विविध[8] भजन एसौ,
छांड़ै न स्वभाव क्यौं हूँ बरजि बिलाई कौं ॥

तब स्वामी वेऊ जु बुलाये। भोग लग्यौ सो सबै जिमाये ॥
कछु जैंवे वे रूखौ ग्रास। अज्ञा लै ह्वै गये उदास ॥
समधी पूछी तब इन कही। स्वामी नामी कुल गुन सही ॥
लड़का सुंदर पंडित जोग। घर में दारिद सौं संजोग ॥
बैरागिन के रहै समाज। तिनके घर कोऊ करै न लाज ॥
मुड़िया[9] आवैं बसें रु जाहिं। बहु तक घर में बैठे खाहिं ॥
कोऊ संगारथ कौं कहुँ आवै। राँडहु काढ़ि पुरी करि ख्वावै[10] ॥
इनतौ रूखी रोटी दार। मुड़िया हम समान ज्यौनार ॥
स्वामी परमारथ में सांँच्यौ। माया काल-व्याल[11] तें बाँच्यौ ॥

---

१ भोजन करावैं। २ पक्का भोजन। ३ बेफर की रोटी। ४ संसारी लोग ५ समूह। ६ पत्नी। ७ हाथी के दाँत। ८ दिखाने और खाने के भिन्न। ९ बैरागी बाबा जी १० विधवा स्त्री भी पूड़ी बनाकर खिलाती है ११ सर्प

जिन प्रभु कौं यौं तन-धन दीयौ । जन-ब्यौहार स्याम सिर लीयौ ॥
प्रभु वा द्विज कौ हिरदौ प्रेरौ । सुनतहि वचन भयौ मन चेरौ ॥
नेगिन सौं बोल्यौ वह एसें । परम वैष्णव बोलत जैसें ॥
जे-जे मेरी आसा धरैं । ते-ते तुम्हरौ आदर करैं ॥
वे प्रभु के जन सदा निसंक । गनैं लोक-पालनि कौं रंक ॥
वे तौ उत्सव मांझ उदार । सर्वसु देत न लावैं बार ॥
कछु संकोच खरच कौ यातें । राग-भोग घटि प्रभु कौ तातें ॥
द्वै घरिया ज्योतिष सुधवायौ[1] । द्वै हजार कौ तिलक पठायौ ॥
भूषण भाजन वसन अनेक । पठये विधिवत सहित विवेक ॥
तिय सेवा पाक तें छुटाई । गुरु के कहे बरसि में आई ॥
सोऊ तब जब दंड सहायौ । गहनौं बेंच महोत्सव लायौ ॥
वह व्यवहार कसर तब गई । स्वामिनि प्रकृति भाँवती[2] भई ॥
सुत-बरात कौं बन्धु सजावैं । कागद द्रुम बहु जंत्र बनावैं ॥
अगनि-जंत्र कौ नाम सुन्यौ जब । कवित एक स्वामी कीनौ तब ॥

कवित्त-पूत के ब्याह पिता परिफुल्लित कंचन काढ़ि[3] उलू[4] बरसै ।
कागद बाग लगाइ कलि-द्रुम[5] भूख लगै फल कौं तरसै ॥
तरतारक नाम नहीं परचै बर बोरक[6] नाम हियौ सरसै ।
सठ स्वारथ सौं संबंध बन्यौ परमारथ 'लाल' कहाँ परसै ॥

पुनि विवाह कौं बहु विधि दीनों । समधी तन-धन अर्पन कीनों ॥
वाकै भक्ति भई अति शुद्ध । स्वामी के प्रताप सत् बुद्ध ॥

दोहा—'भगवत' जे प्रभु सौं लगै तजि नस्वर संसार ।
सब लज्जा भगवान कौं बिगरै क्यौं ब्यौहार ॥

---

१ मुहूर्त निकलवाया । २ उत्तम । ३ सोना खर्च करके । ४ अग्नि, उल्का । ५ कलियुगी पेड़ । ६ निर्मल बुद्धि ।

श्री दामोदर स्वामी जी की परचई*

दोहा—अब सुनि स्वामी लाल के शिष्य दमोदर विप्र।
हित-करुना आये बिपिन कीरतिपुर तें छिप्र[१] ॥

जब तें 'लाल' चरन सिरनायौ। रसिक अनन्य धर्म उर छायौ ॥
श्री वृन्दावन-वास दृढ़ायौ। दंपति-संपति कौ सुख पायौ ॥
श्री राधावल्लभ सौं चित अटक्यौ। सब संसार स्वादसुख फटक्यौ[२] ॥
निसि-दिन प्रभु के चरितनि गावैं। अहंता-ममता निकट न आवैं॥
जो कछु देश के भेंट पठावैं। प्रभुकौं उत्तम भोग लगावैं ॥
गुप्त बोलि संतनि भुगतावैं[३]। प्रभुता[४] करि काहू न जनावैं ॥
श्री यमुना सौं साँचौ प्रेम। पूजा करें धरें दृढ़ नेम ॥
श्री राधावल्लभ कौ सु प्रसाद। तुलसी गंध मलय[५] मालादि ॥
नित प्रति कालिंदी[६] कौं देंहिं। बैठि भावना करि सुख लेंहिं ॥
लिखि-लिखि श्री भागौत पुरान। दस पुस्तक सुंदर लिपि बान ॥
गुरुकुल में पधराईं तथा। पात्र विचारि और ठां जथा ॥

१ शीघ्र। २ निकाल कर फैंक दिया। ३ संतों की सेवा में लगा देते थे। ४ बड़प्पन। ५ चंदन। ६ यमुना।

* सहनशील की सींव रहसि ग्रन्थनि कौं जानै।
हिये बसैं जुग चरन रीति हित की पहिचानै ॥
दिन-मणि श्री भागौत रूप करि जग दरसायौ।
हरि गुरु संत प्रताप विविध भाँतिनु करि गायौ ॥
निजु धरी प्रतिज्ञा विपिन बसि डग न एक बाहर धरी।
हित दामोदर आशय उदधि वानी विमल प्रगट करी ॥११७॥
प्रभु-सेवा नित नेम नेम कालिन्दी-बन्दन।
प्रीति सहित पुनि पूजन कुसुम गन्ध फल चन्दन ॥
इक दिन अन्तर भयौ ताप तन अधिक सतायौ।
जन पर करुना अमित हंसजा नीर बढ़ायौ ॥
तिन पौरि निकट बहि आनिकै साँची निष्ठा जानि उर।
श्री यमुना इष्ट प्रसाद कौ हित दामोदर परिचय प्रचुर ॥

(र० अ० प० ११६ ११७)

काहू बुरौ-भलौ नहिं कहैं। निर्दूषित सब ही सौं रहैं॥
निंदा काहू की नहिं करैं। जो कोउ करै तहाँ ते टरैं॥
मिथ्या मुख तें कबहुँ न बोलैं। पर औगुन कौं गुन करि तोलैं॥
उत्तम सबनि आपतें मानैं। सबतें निंद अपनपौ जानैं॥
विधिनिषेध सब ही तें न्यारे। धर्म, इष्ट, जन[1] लागत प्यारे॥
ज्वर आयौ स्वामी अलसाये। दिन द्वै यमुना जानि न पाये॥
बढ़्यो प्रवाह सु कहत न आवै। बीथी[2] हाट बजारनि धावै॥
त्यौं-त्यौं सबनि महाभय पायौ। ह्याँ लौं जल देख्यौ न सुनायौ॥
बहुतनि जमुना जी पहिराई। पूजा करि बहु भैंट चढ़ाई॥
त्यौं-त्यौं भानु-सुता[3] जू बाढ़ैं। लोग घरनि तें संपति काढ़ैं॥
भागमती कौं सुपनौ दीयौ। चाहौं स्वामी दरसन कीयौ॥
बाई सब छित[4] आइ सुनाई। स्वामी नें तब भैंट मगाई॥
नित्य नैंम हौ त्यौं ही करी। अस्तुतिपद※करि छवि उरधरी॥

१ भक्तजन। २ गली। ३ यमुना। ४ सब की उपस्थित में।

※ जमुना जगत पर जगमगै।
पतित पावन होत तव ही जबहि जल-कन लगै॥
असित वारि विकार कौं असि नगन पैनीधार।
पाप शाप रु ताप तरु बड़ उग्र नाम कुठार॥
शरण रक्षक बिजय पञ्जर आत त्रास असंग।
नीरनिधि भव पार होइ नर निरखि विमल तरंग॥
भानु-तनुजा, धर्म-अनुजा विदित वेद पुरान।
सदा सारद संभु नारद करत गुन-गन गान॥
कमल-लोचन कूल जाके करत केलि कलोल।
नित्य रास-विलास विहँसत मध्य तोय-झकोल॥
घाट सुघटित जटित मनि-नग जगमगत सोपान।
निरखि विवि प्रतिविम्व भामिनि प्रगट उपजत मान॥
विटपडार सुबेलि कुसुमित नमित झूलत नीर।
विकच कल कल्हार लुब्धे बास षट्पद भीर॥
महा महिमा नृपति-तीरथ पूर पूरक काम।
देत सब सुख हित दामोदर तीर करि विश्राम॥

दरसन करि भोजन तब बहुरी[1] । घरी चार में ह्वै गई लहुरी[2] ॥
स्वामी के घर उज्ज्वल सेवा । व्रजवासिनु यह जान्यौ भेवा[3]॥
निसि में बेई चुरावन आये । दामोदर जी ने लखि पाये ॥
जानि अजान भये न जतावैं । प्रभु आज्ञा बिनु कोइ न आवैं ॥
सब में प्रभु सब वस्तु जु उनकी । जिनकौं देहिं भई तब तिनकी ॥
प्रभु जु विचारी सोई भली । निज भगतनि की अद्भुत गली॥
ऐसे स्वामी करत विचार । चोरनि बाँधी पोट[4] सँभार ॥
एक पोट तौ घर लै गयौ । दूजी पोट उठावत भयौ ॥
इकलौ पोट न उठई जाई । तब स्वामी ने आपु उठाई ॥
वह जानैं मम संगी आयौ । तिन ही चुप ह्वै बोझ उचायौ॥
बाहर पथ वह संगी मिल्यौ । कहि इकलौ कैसे उचि चल्यौ ॥
इनकौ बतबताहटौ सुन्यौ । लोगनि इक पकर्‌यौ सो हन्यौ[5]॥
पोट चली स्वामी कें आई । चोरी भई सबनि सुधि पाई ॥
मार्‌यौ सुनि स्वामी दुख पायौ । वह तौ प्रभु कौ प्रेरौ आयौ ॥
वा दिन महाप्रसाद न पायौ । पोट साज[6] सब बेंचि मगायौ ॥
ताकौ मानि महोत्सव कीयो । जै बुलाइ चोरहिं जस दीयौ ॥
या धन हेत तजे उन प्रान । खरच्यौ वाही कौ हित मान ॥
व्रजवासी जब-जब यौं आये । लै-लै गये इनहुँ सुख पाये ॥
रसिक उपासक बड़े धनी । तिन स्वामी को चोरी सुनी ॥
ते बहु सौंज[7] भैंट लै आवैं । स्वामी लैंहि न हाथ लगावैं ॥
इक दिन गिरिधर पुहकर दास । लाये भाजन भूषन वास[8]॥
सुनि उठि मान सरोवर गये । यह कछु मनहिं विचारत भये ॥
संग्रह करौं न यह प्रभु इच्छा । चोर मर्‌यौ मैं पाई शिक्षा ॥
संग्रह लखि सब कोऊ आवैं । अपराध लगै ब्रजजन दुख पावैं॥

---

१ वापस गई । २ छोटी । ३ भेद । ४ गठरी । ५ मार डाला ।
६ गठरी का सामान ७ सामग्री । ८ वस्त्र

दोहा—सखी सखा सब कृष्ण के, व्रजवासी नर-नार।
'दामोदर' जन नै चलौ, उत्तम यहै विचार॥

सेवा स्वरूप[1] अनत पधराई। रही नाम-सेवा जु सदाई॥
दौना-पातर व्रज-रज भाजन। लिखि वन सेवन लगे विराजन॥
भाषा करी सु मन हर लेंनी। रसिक अनन्यनि कौं सुख दैंनी॥
परमधर्म नीके करि गायो। क्षीर-नीर करि पृथक् दिखायौ॥
जुगल-केलि निजु रहसि जु गाई। कहत-सुनत सब कौं सुखदाई॥
गुरु-प्रताप अरु संत-प्रताप। नाम भागवत महिम[2] अलाप॥
आसा करी न आन हू कीयौ। जो कोउ देहि सो उनहि लीयौ॥
घर में हौ सो भोग लगायौ। यह ठहराइ[3] जुगल दुलरायौ॥
आगम[4] जान्यौ जब वन पायौ[5]। पोथी साज पहिल ढङ्ग लायौ॥
संत-महंतनि सौं कर जोरे। पाँइनि परि-परि किये निहोरे॥
निजु प्रसाद दंपति कौ आयौ। इहि विधि वन निजुधाम सिधायौ॥
एसी स्वामी की बहु बातें। ते प्रभु बस करिबे की घातें॥

दोहा—'भगवत' दामोदर कहनि, रहनि तिहीअनुसार।
प्रन पाल्यौ श्री व्यासमुत, दियौ दिखाइ विहार॥

अथ श्री ध्रुवदास जी की परचई*

दोहा—कथा रसिक 'ध्रुवदास' की, सुनत रसिकता होइ।
तिनके पूरण प्रेम की, सरवर[6] करै न कोइ॥

---

१ स्वरूप,विग्रह। २ महिमा। ३ निश्चय कर के। ४ अचिन्त्य। ५ शरीर छोड़ा। ६ समानता।

* प्रथम सुमिर हित नाम धाम-धामी जु बखाने।
रसिक जननि के हेत जुगल परिकर गुन गाने॥
बरनी लीला कवित रूप-रस, गति-मति पागी।
सुनि-सुनि गिरा गंभीर बहुत भये वन अनुरागी॥
महा गोप्य रस निगम जो गुरुप्रसाद-बल बिस्तरयौ।
बलि जाउँ देग कुल धाम की जहँ ध्रुवदास सौ औतरयौ॥

कायथ कुल देवन[1] के वासी। परम्पराइ[2] अनन्य उपासी।
श्री गोपीनाथ के शिष्य सु श्रेष्ठ। सेवत राधावल्लभ इष्ट॥
श्री हरिवंश कृपा अति भई। वन बसिवे की रति-मति दई॥
तब श्री वृन्दावन में आये। जमुना-कुंज निरखि सरसाये[3]॥
निसि दिन जुगल-केलि उरमाहें। वानी करि कछु बरन्यौ चाहें॥
सिव-विधि-सेस प्रवेश न मनकौ। कैसें कह्यौ जात गुन तिनकौ॥
देख्यौ चाहे इक टक रहै। उर आवै सो मुख नहिं कढ़ै॥
खान-पान तजि मण्डल पर्यौ। देख्यौ गुन बरनौं, हठ कर्यौ॥
दिन द्वै गये तीसरौ आयौ। तब राधे कौ हिय अकुलायौ॥
आधी रात लात सिर दई। चौंकि पर्यौ, नूपुरधुनि भई॥
वानी भई जु चाहत कियौ। उठि सो वर तोकौं सब दियौ॥
एसे कहि अंतरहित[4] भई। ध्रुव कौं रति मति वानी दई॥
निरखी दंपति-संपति सिगरी। है वैकुंठ कोटि तें अगरी[5]॥
आरष-पौरष[6] ग्रन्थ निहारत। कुंजनि नित्य-विहार विचारत॥
श्रुति-स्मृति पुरान-मत भाषा। करि उपजाई जन-अभिलाषा॥
केलि रहसि दंपति की बरनी। कही जु रसिक अनन्यनि करनी॥
प्रेम-नेम सिद्धान्त जु कीनौ। ब्रज-विनोद न्यारौ करि दीनौं॥
कुंजमहल पिय, प्यारी, सखी। अद्भुत केलि कही सो लखी॥

---

१ देवबन। २ परम्परा से, ध्रुवदासजी के पिता भी श्री राधावल्लभीय उपासक थे। ३ प्रसन्न हुये। ४ अन्तर्धान। ५ श्रेष्ठ। ६ श्रुति-स्मृति।

पिछले पृष्ठ की शेष टिप्पणी—

परम पुरातन धर्म मर्म आरर्ज हित गाये।
ताही मग रस ढरे धाम वृन्दावन आये॥
हित-मण्डल अभिराम श्याम-श्यामा जहँ राजैं।
तिन मुख आयसु पाइ भने बहु ग्रन्थ-समाजैं॥
उमर वरस दस हृदय में वाढ्यौ प्रेम प्रकाश की।
कलि सुगम सेतु भव-तरनकौं गाथ विमल ध्रुवदास की॥

अलि अनन्य रसिक गाथा ४७

नव- नव लीला हिय में भासी । ते रसिकनि हित सबै प्रकासी ।।
'सत सिंगार' आदि रचि ग्रन्थ । दरसायौ जीवनि-हित पन्थ ।।
नाम,वरन,पट,टहल सखिन की । तंत्र पुराणनि मत सु लिखन की ।।
कोमल बानी सब कौं भावै । अक्षर पढ़त अर्थ दरसावै ।।
दिसि-दिसि घरघर प्रगटी बानी । रसिकनि अपनी निधि करि जानी ।।
चारि दिसानि समुद्र प्रयंत । बानी पढ़ैं सुनैं सब संत ।।
बानी सुनि-सुनि भये उपासक । कर्म-ज्ञान तजि भये वन-वासिक[1] ।।
गुरु-गुरुकुल सब भये प्रसन्न । प्रीति-रीति लखि कहैं धनिधन्य ।।
वन-विहार कौं जब प्रभु जाते । इनको कुटी तहाँ ठहराते ।।
भोग-आरती भेंट जु करते । तब निजु इष्ट भवन अनुसरते ।।
शुद्ध पाक करि भोग लगावैं । संतनि सहित प्रसादहिं पावैं ।।
हरिवासर[2] के भेद न मानैं । सर्वसु महाप्रसादहिं जानैं ।।
जो गुरुजन कछु चरचा ठानैं । बाद न करैं कहैं सो मानैं ।।
महा नम्रता सौं मन मोहैं । सहनशील कौं ध्रुवसम को है ।।

दोहा—बानी हित ध्रुवदास की, सुनि जोरी मुसिकाति ।
भगवत् अद्‌भुत रीति कछु, भाव-भावना पाँति ।।

[1] वृन्दावन वासी [2] एकादशी

अथ श्री नागरीदास जी की परचई*

दोहा—धर्मी श्री हरिवंश के, तिनकौ भयौ जु संग।
रसिक नागरीदास उर, चढ़्यौ प्रेम कौ रंग॥

नागरीदास बेरछा रहते। हरिजन निरखि दौरि पग गहते
पावन छत्री कुल सु पँवार। चाहत गुरु कीयौ निरधार[1]
भागनि चत्रभुजदास जु मिले। चरचा करि रस-रँग में भिले
संगति करि वृन्दावन आये। श्री वनचन्द के पद लपटाये

---

१ निश्चय।

* नेही नागरिदास अति, जानत नेह की रीति।
दिन दुलराई लाड़िली, लाल रंगीली प्रीति॥६२
व्यास नन्द पद कमल सों, जाकैं दृढ़ विश्वास।
जिहि प्रताप यह रस कह्यौ, अरु वृन्दावन बास॥६३
भलीभाँति सेयौ विपिन, तजि बन्धुन सों हेत।
सूर भजन में एक रस, छाड़्यौ नाहिन खेत॥६४

—हित ध्रुवदास—'भक्त नामावलि

हित सरनागत होत भावना भक्ति प्रकासी।
बसे साँकरी खोरि भये बानैत उपासी॥
ब्रज वासिन यौं भजैं जुगल-परिकर ब्रज सगरौ।
यही भाव दृढ होत प्रेम उर परस्यौ अगरौ॥
गुन गन बानी विचित्र कथि श्री हरिवंश प्रसाद बल।
वृषभानु कुंवरि पद दृढ़ सुरति करी नागरीदास भल॥११८

श्री हरिवंश चरण दृढ़ अटकी मति अरबीली।
अक्षर रस को गहर गूढ़ बानी गरबीली॥
लाल-लड़ैती दरस चाह जिन यहै ब्रत लीनौ।
त्याग दियौ जल-पान कृपा निधि दरसन दीनौं॥
रच्यौ बरस गांठ उत्सव कुंवरि जुगल रहस पाई लबधि।
श्री नागरीदास रस भजन हद गुरु मारग नेही अबधि॥११६

—चाचा हित वृन्दावनदास, 'रसिक अनन्य परचावलि'

(शेष अगले पृष्ठ पर)

भागमती भावज हू आई। दुहुँनि एक सँग दिक्षा पाई ।।
सँग लाये निज संपति सारी। गुरु-कुल पूजि साधु सुखकारी ।।
भये अनन्य सभा के मंडन। जिनकौ दरस-परस भव खंडन ।।
निसिदिन रहसि बिहार विचार। हित जी की बानी आधार ।।
हितजी की बानी में प्रान। हित बानी तजि सुनत न आन ।।
सर्वसु बानी ही करि जान्यौ। बानी कौ परताप बखान्यौ ।।
बानी कौ कोइ इक पद कहैं। आठ पहर तामें छकि रहैं ।।
यह रस नवधा भक्ति उबीठी[1]। कथा भागवत लागत सीठी[2] ।।
या रस रहित जु ते दुख पावैं। कुंज बाहरी[3] कथा सुहावैं ।।
ते गुरुकुल सौं चुगली करैं। ये न भागवत मन हीं धरैं ।।
इकदिन गुरुसुत मग चलि आवत। बेई चुगल फिरि तिनहिं जलावत।।
'अवर कथानि नहीं मन लावहु। दशम होत है अब तौ आवहु' ।।
एसें नागर जू[4] नें कही। मानी नागरिदास जु सही ।।
'भलैं कुँवर जू' कहि तब आये। धेनुक[5] कर गहि हते[6] सुनाये ।।
सुनि नागरीदास अकुलाने। उठे सभा तें घरहिं पलाने ।।
कही गुसाईं दुख किन दीयौ। बिमन[7] भये उठि उमग्यौ हीयौ ।।
तब गुरु सुत जू सौंह दिवाई। कहौ चले क्यौं मन कहा आई ।।
'जु कछु भावना करत जात हे। हित पद में फूले न मात हे ।।

---

१ स्वाद रहित। २ फीकी। ३ ब्रजलीला से संबंधित। ४ श्री नागरवर जी, श्री हिताचार्य के नाती। ५ धेनुकासुर। ६ मार डाला। ७ उदास होकर।

पिछले पृष्ठ का शेष—

अन्तरंग में मगन रहैं सन्तत सब जानैं।
सुनि धेनुक परसंग गिरे भूपर मुरझाने ।।
बन उठि बरसाने बसे जहँ नरहरि संजोग।
लियौ आपु मुख माँगि कै प्रगट निशीथी भोग ।।
बनमाली गुरु पाइ कें व्यास सुवन गुन ही भनै।
रसिक नागरीदास की बानी हित निजु रुचि सुनै ।।५७

—गोविन्द अलि जी, अनन्य रसिक गाथा

नवलकिशोर नवीन किशोरी । कहत भये ज्यौं खेलत जोरी ।।
चिबुक सुचारु प्रलोइ[1] प्रबोधित‡ । तिनकर गदहनि पग क्यौं शोभित'।।
सब के सुनत बात यह कही । उत्तम रीति रसिक जन गही ।।
सब तजि गुरु-मारग में लगे । रहत जु जुगल भावना पगे ।।
रीझि गुसाईं नें उर लाये । रिसकरि जुगलनि कौं समुझाये[2] ।।
निज धर्मी तेइ मत्सर करते । बरसाने गये तिनके डरते ।।

दोहा—जिनके बल निधरक हुते, तेइ बैरी भये बान ।
तरकस के सर[3] साँप ह्वै, फिरि-फिरि लागे खान ।।§

इनकी रीति-प्रीति कछु न्यारी । तब मन में यह बात बिचारी ।।
हितजी की बानी यह उर धरि । 'येदोउ खोरिखिरक गिरि गहवर।।
विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि*'। बरसाने बसि निरखैं केलि ।।

---

१ सहला कर । २ समझाया । ३ बाण ।

‡ यह काव्यांश श्रीहिताचार्य के निम्नलिखित पद से लिया गया है—
आजु निकुंज मंजु में खेलत नवलकिशोर नवीन किशोरी ।
अति अनुपम अनुराग परस्पर सुनि अभूत भूतल पर जोरी ।।
विद्रुम फटिक विविध निर्मित धर नव कर्पूर पराग न थोरी ।
कोमल किशलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी ।।
मिथुन हास-परिहास परायन पीक कपोल कमल पर झोरी ।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीवी-बंधन मोचत डोरी ।।
हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विकल मानजुत भोरी ।
'चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधित' पिय प्रतिबिंब जनाय निहोरी ।।
नेति-नेति बचनामृत सुनि-सुनि ललितादिक देखत दुरि चोरी ।
(जैश्री)हित हरिवंश करत करधूनन प्रणयकोप मालावलि तोरी।।
(हि० च० ७)

§ श्रीनागरीदास कृत दोहा ।

* देखि सँखी राधा-पिय केलि ।
'ये दोऊ खोरि,खिरक, गिरि-गहवर विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि ।।'
ये दोऊ नवलकिशोर रूप निधि, विटप तमाल कनक मनौं बेलि ।
अधर-अदन, चुंबन, परिरंभन तन पुलकित आनंद रस झेलि ।।
पट बंधन कंचुकि कुच परसत, कोप कपट निरखत कर पेलि ।
(जै श्री)हित हरिवंश लाल अलि लंपट धाइ धरत उर बीच सकेलि ।।
(हि० च० ४६)

गहवर गिरि[1] पर कुटी सँवारी । जहाँ नित क्रीड़त हैं पिय-प्यारी ॥
इक दिन बीती आधी रैन । निरख्यौ कौतिक, पायौ चैन ॥
गहवर मृदंग ताल बहु बाजैं । नूपुर कल किंकिनि धुनि गाजैं ॥
दीपक द्रुमनि मध्य बहु चमकैं । सखी जूथ दामिनि सी दमकैं ॥
यह छबि निरखि मूरछा आई । तबहि प्रिया तें आज्ञा पाई ॥
'हम नित विहरत गहवर वन में । दरस दयौ तोहि सखिनु के गन में ॥
भूखे हैं हम आधी रैन । या बिरियाँ[2] ख्वाबै तब चैन' ॥
अर्धराति उठि भोग लगायौ । इहि बिरियाँ कौ ठिक ठहरायौ[3] ॥
पद पचास करि बरनि सुनायौ । तब तें समय निशीथ[4] सुहायौ ॥
'बरसाने में अस्थल करौ । मेरी बरसि गाँठ उर धरौ' ॥
यौं कहि नवलकिशोरी जोरी । उतरी जितहि साँकरी खोरी ॥
यह सुनि नागरीदासि सिहाई[5] । भागमती कौं कथा सुनाई ॥
सुनि मन दै अस्थल करवायौ । वन तें रसिक-समाज बुलायौ ॥
गुरुकुल नरनारी गरग आये । बाजे बजे बधाये गाये ॥
इक-इक दिन सब करैं बधाई । मेवा तिल चाँवरी बँटाई ॥
ढाँढ़ी-ढाँढ़िन कौ शुभ वेष । नाचत विरुदनि[6] पढ़त सुदेस[7] ॥
भागमती आनँद रस भींनी । संपति सब उत्सव में दीनी ॥
भूषण धन बहु वसन लुटावहिं । भोजन पौन छतीसौ[8] पावहिं ॥
ब्रजवासी नरनारी जिते । अतिसय गौरव[9] राखत तिते ॥
बरसि गाँठ राधे की ऐसे । करैं, कही श्रुति-स्मृति जैसे ॥
एक चोर ने यह मन आनी । खरचत बहु ये हैं धन मानी ॥
कुटी जहाँ चोरी कौं आयौ । तहाँ सिंहने वचन सुनायौ ॥
जब-जब कोउ सतावन आवै । तब-तब नाहर तें डरि धावै ॥
दिन वन फिरै न कोऊ सतावै । रात परैं नित चौकी आवै ॥
रसिक मिले रस चरचा करैं । सिंह सहसकारी मन धरैं ॥
इक दिन रसिक उपासक आये । तिन हित आपुहि ग्राम सिधाये ॥

---

१ बरसाने में गहवर वन की पहाड़ी । २ इस समय । ३ भोग लगाने का समय निश्चित कर लिया । ४ अर्धरात्रि । ५ प्रसन्न होहु । ६ यश । ७ सुन्दर । ८ [illegible] जाति । ९ सन्मान ।

पोछे तें जु सिह लगि चल्यौ। मनहुँ स्वान स्वामी कर पल्यौ।
स्वामी चले आपु लै सीधौ। आड़ौ सिंह भयौ हित-बीध्यौ[1]।
खुरजो करि धरि कै लै आये। सैन-भोग धरि सुहृद[2] जिमाये॥
नित-बिहार उर अन्तर झेलि[3]। पद-साखी करि बरनी केलि।
श्रीहित जी कौ धर्म बखान्यौ। सर्वोपरि हित जी कौं मान्यौ॥
रसिक अनन्यता दुर्लभ भाखी। जगत क्रिया[4] तें न्यारी राखी॥
हित-धर्मिनु में उत्तम निबट्यौ[5]। मनहुँ दूसरौ सेवक* प्रकट्यौ॥
बानी रसिकनि कौं सुख दाई। बाँचत सुनत न रहै कचाई॥
श्री हरिवंश धर्म अरु बानी। ताकी महिमा विविध[6] बखानी॥
बार-बार हरिवंश प्रताप। जीवन प्राण यहै नित जाप॥
वृषभानु सुता संग नंद कुमारहिं। गाइ रिझाये रहसि[7] विहारहिं॥
चरित अनंत कहाँ लगि गाऊँ। गुन-सागर कौ अंत न पाऊँ॥

दोहा—बानी श्री हरिवंश की, धर्मी धर्महि प्रीति।
करी नागरीदास जू 'भगवत' मुदित सुरीति॥

अथ श्री भागमती जी कौ परिचइ

दोहा—हित हरिवंश कृपा करी, निरखे जुगल सरूप।
रसिक अनन्यनि संगते, भागमती सुखरूप॥

चिंतामणि राजा अधिकारी। ताकैं द्वै प्रसिद्ध कुल-नारी॥
गुन अरु रूप सरस अभिराम। इंदुमती भागमती सुनाम॥
तिन में भागमती ही बड़ी। श्रद्धा हरि-भगतनि में मढ़ी[8]॥
भूखे - प्यासे नाँगे पोषै। हरि-भक्तनि कौं अतिसय तोषै[9]॥

---

१ प्रेम से बिंधा हुआ। २ स्नेही रसिक जन। ३ धारण करके। ४ जगत्‌व्यवहार। ५ सफल हुए। ६ अनेक प्रकार से। ७ एकान्त। ८ लग गई। ९ सन्तुष्ट करती थीं।

*मानो सेवक जी ने पुनर्जन्म ग्रहण किया हो

पति रह्यौ पातसाह के संग । स्वामि-काज में निपुन अभंग ।।
रानी रहैं देश ओड़छैं । हरिजन रमते आवैं गछैं ।।
कबहुँक नागरीदास पधारे । जीव-विमुख तिनके भ्रम टारे ।।
श्रीहित धर्म दृढ़ायौ जिनकौं । कुंजमहल पथ आन्यौ तिनकौं ।।
कबहुँक भागमती के पुर में । बसें निरन्तर दंपति उर में ।।
अरु निज रीति धर्म विस्तारें । जे रसग्य सुनि गुनि उर धारें ।।
चरचा पुर घर-घर में भई । चली-चली रावर[1] में गई ।।
कोउक सखी प्रवीण सुहाई । तिन भागमती हि जाइ सुनाई ।।
'विधिनिषेध वरनाश्रम रहित । सब तें परें प्रेम-रस कहत' ।।
सुनि नागरीदास पधराये । विधिवत् पूजि सबनि सिरनाये ।।
चरचा करि निज धर्म दृढ़ायौ । प्रकृत प्रपंच तें परे बतायौ ।।
माया काल रहित यह कर्म । क्षीर-नीर[2] किय पृथक सुधर्म ।।
एसें कहि निज रीति बताई । भागमती के उर अति भाई ।।
कछुक मास सत संगत करी । वृन्दावन देखन अनुसरी[3] ।।
श्रीवनचंद चरन गहि रही । दिक्षा शिक्षा विधि निजु लही ।।
साठ पयादे बीस सवार । दासी दास रु डोला चार ।।
बरसाने हित अति कलमलैं[4] । मेवन[5] के डर गैल न चलैं ।।
ह्वाँ ते व्रजबासी जु बुलाये । बिना विघन निसि लै पहुँचाये ।।
कछु दिन रहि देख्यौ सुख भारी । जथा जोग्य पूजे नरनारी ।।
बरसाने की कुँवरि किशोरी । पट-भूषण दिये काजर रोरी ।।
सब कौ पूजन किय सुखकारी । पुनि स्वदेश की गैल सँभारी ।।
गुरु, गुरु-कुल कौ करि सनमान । करि कैं गई हिये प्रभु-ध्यान ।।
लसकर[6] तें पति जब घर आयौ । तिय व्रज-गमन सुनत दुखपायौ ।।
पहर एक लौं चाबुक सूरी । तनक न लगी भजन में पूरी ।।

---

१ महल । २ दूध-पानी । ३ प्रस्थान किया । ४ व्याकुल होती थी । ५ मेवजाति के मुसलमान लुटेरे । ६ फौज ।

मारत हाथ थके बहु त्रासत । त्यौं-त्यौं तियतन वदन विकासत ॥
पति यमवत् जातना उपाई[1] । छाती ऊपर सेज बिछाई ॥
तापर लहुरी रानी संग लिय । केलिकरीसब निसि रतिरंग हिय ॥
भागमती दंपति रस भीनी । भक्ति-भाव में नेकु न हीनी ॥
प्रात भयौ राजा उन रानी । बमन[2] कियौ सब किनहूँ जानी ॥
मरन समैं भयौ, परचौ पायौ । लघु तिय सहित पगनि सिरनायौ ॥
तुम मो कृत अपराध छिमावहु । कृपा करहु हम मरत जिवावहु ॥
चाबुक तुव तन नेकु न परसे । लहुरी के तन उपटे दरसे ॥
ये तौ जुगल रूप-रस पागी । नहिं जानिये कौंन कै लागी ॥
अब पति व्याकुल बिनती करै । बारबार पग में सिर धरै ॥
अब कछु मनहिं न आनहु आन । अज्ञा करहु सोइ परमान[3] ॥
इन कहि गुरु करि प्रभुकौं भजौ । देह सफल करि जग में गजौ ॥
मानि लई तब नीके भये । मरन समै सम[4] के दुख गये ॥
तब श्री वृन्दावन सब आये । सपतिनि[5] पति हू शिष्य कराये ॥
बरसाने लिवाय पुनि गई । नागरीदासहिं पुजावत भई ॥
अरु अस्थल करि लीला थर्पी[6] । गुरु व्रजबासिनकौं निधि अर्पी ॥
पति सौं कही देश निज जाहु । लहुरी तिय, तुम इनके नाहु ॥
हम तौ वन बरसाने बसि हैं । या व्रत तें कबहूँ नहिं खसि हैं ॥
अज्ञा लै पति देश सिधारचौ । इन सौं कबहुं न द्वेस विचारयौ ॥
धन अरु वसन बिबिध पहुँचावै । भागमती गुरु-इष्ट लड़ावै ॥
भाव-भावना रीति जु एसी । कही नागरीदास जू तैसी ॥
अतिसै करि बरसाने वास । गिरि गहवर निरखैं नित रास ॥

दोहा—एसी रसिक अनन्यता, राग भोग पति त्यागि ।
'भगवत' नागरीदास सँग, रही जुगल-रस पागि ॥

---

१ दी । २ क़ै, उलटी । ३ स्वीकार । ४ मरण-काल के समान । ५ सपत्नी, सौत । ६ स्थापित की ।

अथ श्री हरिदास तुंवर जी की परचई*

दोहा—हरीदास छत्रीनु में, तूँवर कुल उत्पन्य।
बसत गाँव सोडीगनं, परम रसज्ञ अनन्य ॥

श्री हरिवंश तनय बनचंद। तिन के सुत नागर रस-कंद ॥
तिन के शिष्य धर्म सम्पन्य। त्यागी सम हग सम नहिं अन्य ॥
जब तें गुरु कों पाछौ लीनौं। प्रभु सेवा में तन मन दीनौं ॥
पिता बिरोध करै दुख दाई। त्यौं-त्यौं प्रभु सों प्रीति सबाई ॥
ज्ञाति कुटुंब सबै दुख पावैं। ये निसंक प्रभुके गुन गावैं ॥
पिता कहैं हम छत्री सूर। मदिरा-मास सिकार सुमूर[१] ॥
क्षत्री धर्म कियौ इन नंस। याके भये गयौ अब वंश ॥
छ्वै-छ्वै मर्म कुवचन सुनावैं। ये सब में प्रभु लखैं लड़ावैं ॥
एक समैं जु सर्प विषधारी। डस्यौ पाँव में निसि अँधियारी ॥
और संग के मारन लागे। ये उठि ताहि बचावन भागे ॥
रक्षा करि विषधरहिं बचायौ। वाहू में प्रभु रूप दृढ़ायौ ॥
विष न चढ़्यौ जिनकें यह रीति। काल-व्याल उलटौ भय-भीति ॥

---

१ सर्वस्व।

* कुल पारथ अचिरज कौन है।
हरीदास तूँवर कुल पावन जाके सम को हीन है ॥
भक्तमाल श्रीनाभा जाकौं उपमा दई अनेक है।
शिवि रु दधीच देहदत जैसें बलि सम जाकी टेक है ॥
परम धर्म प्रहलाद महामति सीस दैन जगदेव कलि।
श्री हरिवंश कृपा तें इहिं विधि भक्ति-कलपतरु सरस फलि ॥
हरि निर्मयौ एक इहि कलि में तिलक-दाम धरि पूजि पद।
तिनकौ कृत असमंजस हू लखि प्रभु सम सूझै कृपा हद ॥
संतनि बहुत परिक्षा लीनी व्रत तें नाहिन हल चल्यौ।
बृन्दावन हित रूप जाऊँ बलि अजित जीति परिकर रल्यौ ॥

—भक्त प्रसाद बेली—१०४

और सुनौं इन कौ जस पावन। रसिक अनन्यनि के मन भावन॥
एक साधु इनके घर आयौ। उनि औटपा[1] अटपटौ[2] छायौ॥
कहन लग्यौ तुम सुनौं उदार। हमैं देहु तिय घर भण्डार॥
तब इन कही पहिल ही तेरौ। हौं तौ जनम-जनम कौ चेरौ॥
वस्तु तुम्हारी मैं को दाता। तुम ही तें सब जग विख्याता॥
तातें आपुन यहाँ बिराजौ। हौं न रहौं जो सोतें लाजौ॥
यह कहि घर-घरनी[3] दै जनकौं। आपु मुदित उठि चले जु बनकौं॥
तब उन साधु साँच लखि पायौ। हरीदास कौं फेरि बुलायौ॥
कही तुम्हारे ममता नाहीं। तुम में प्रभु, तुम हौ प्रभु माहीं॥
जैसे सुने लखे अब तैसे। या कलि में तुम तौ बलि जैसे॥
एसे कहि वह जन उठि गयौ। अपुनौं करि फिरि इनकौं दयौ॥
औरहु अद्‌भुत एक चरित्र। ताहि सुनत उर होहि पवित्र॥
गुरु, हरि-भक्तनि कौं सम जानें। कबहूँ नेकु न अन्तर आनें॥
घर में साधु-समूह पधारें। सबके पाँइ धोइ सिरधारें॥
पुत्र-कलत्र सुता तिन आगें। टहल करें सब लज्या त्यागें॥
एक साधु के मन यह आई। इनकी सुता देखि रति लाई॥
रहनि लग्यौ घर माँझ सुहायौ। कन्या हूँ करचौ साधु कौ भायौ॥
ग्रीषम निसि तिखने मिलि जागे। भोर भये निद्रा रस पागे॥
हरीदास जो जाइ निहारें। सोवत मिलि दोऊ देह उघारें॥
तब इनकौं ता छिन फुरि आई। अपनी चादर उनहिं उढ़ाई॥
आपु उतरि नीचे के द्वार। चौकी दई औरनि निरवार[4]॥
चार घरी पाछें कलमले। वसन सँभारत उखटत[5] चले॥
यह चादर कौने जु उढ़ाई। मेरे बाप की, सुता जताई॥
तब तौ दोउ निपट सकुचाने। मरें कि जाहिं डरे बिलखाने॥
न्हावे के मिस डगरचौ[6] साधु। जाके उर जुर पूरित आधु॥

---

१ उद्दण्ड कार्य। २ विचित्र। ३ पत्नी। ४ रोककर। ५ चिंतातुर। ६ निकल गया।

हरीदास लखि सग सिधारे। मधुर वचन कहि ताप[1] निवारे।
घर-बाहर सब वस्तु तुम्हारी। विमुख नहीं ताके अधिकारी॥
सावधान ह्वै कीजै काज। हमहिं न कछू जगत की लाज॥
जो कोउ अज्ञ दुष्ट लखि पावै। तौ सब संतनि कौं जु सतावै॥
जब कोइ साधुनि कौं कहि बैठै। वह दुख मेरे उर में पैठै[2]॥
दुष्टनि पै निंदा न करैये। डीठि[3] लगै तातैं दुरि[4] खैये॥
सुनि उनि साधु परम सुख पायौ। गुरु समान माने सिरनायौ॥
बाहू कौं उपज्यौ बैराग। प्रभु सौं जोरयौ दृढ़ अनुराग॥
श्री वृन्दावन यमुना तीर। घाट सँवारयौ सब सुख सीर[5]॥
मंदिर शिखर-बंध करवायौ। प्रभु पधराइ कियौ मन भायौ॥
जुगल किशोर सरूप सुहाये। राग भोग करि लाड़ लड़ाये॥
गुरु, गुरुकुल सब सौं अनुरक्ति। जथा जोग्य रिझये करि भक्ति॥
श्री स्यामाजी निकट बुलाये। तनहिं छाँड़ि निज महल सिधाये॥

दोहा—या कलि में नैष्ठिक सुदृढ़, एसौ भयौ न होन।
'भगवत' सब गुन आगरौ, हरीदास सम कौन॥

१ कष्ट। २ प्रवेश कर जाता है। ३ दृष्टि। ४ छुपकर। ५ देनेवाला।

अथ श्री गोविन्ददास जी की परचई*

गोविन्ददास इन ही के भ्राता । ते तौ सब जग में विख्याता
श्रीराधावल्लभ की दृढ़ आस । तोरी लोक वेद की पास[१]
गुरु-परिपाटी करि प्रभु-सेवन । आरति राग-भोग बहु भेवन
जा दिन गुरु कौ पाछौ लीयौ । तन-मन-धन सब अर्पण कीयौ
समय-समय रितु-रितु के भोग । नैमित्तक उत्सव कृत जोग
मुरली प्रभु कौं भली सुनावैं । राग-रागिनी बरनि बजावैं
साधु-समागम सहित विराजैं । बीन मृदंग गुनी गुन साजैं
खोरहटी परगनौं सुठाम । विहारीपुर सु गाम कौ नाम
यहि विधि अपने इष्टहि भजैं । तब ब्यौहार काज कौं सजैं

१ बंधन । २ प्रकार से ।

* अनन्य व्रत गोविन्द कौ बाँकौ ।
सिर साँटे निर्बाह्यौ कलि में परचौ नहीं झाँकौ ।।
पारथ-कुल तूँवर जग कहियतु दिन-दिन भक्ति सवाई ।
प्रभु चौडोल चलै मुख आगें सुमति प्रेम-निधि न्हाई ।।
मुरली मधुर बजावै एसी देउँ सु उपमा को है ।
जिन मोहन वंशी जग मोह्यौ ताहू कौ मन मोहै ।।
प्रगट भई यह बात जगत में पृथ्वीपति सुधि पाई ।
निकट बुलाइ कही अब वैसी मुरली देहु बजाई ।।
भजन गरूर सूर छत्रीपन बोल्यौ बचन विचारि ।
वंशी तौ प्रभु आगें बाजै तुम आगे तरवारि ।।
गोविन्दा गाढ़ी परी यह हुकम कियौ पातसाहि ।
'कै मुरली की टेर देहु कै अंबर चंपू पै वाहि ।।'
सक्यौ नहीं इष्ट-बल निर्भय वाही त्यौं ही जाइ ।
श्री हरिवंश प्रताप,दास-पन दीनौ जग दरसाइ ।।
जन के पन कौं हरिमन लरजत भक्त बछल सुखदानी ।
वृन्दावन हित रूप विदित यह बात नहीं जग छानी ।।

पृथ्वीपति नें बोलि पठाये। सेवा सहित तहीं चलि आये ।।
प्रभु चौडोल चलावैं आगैं। आज्ञा लै पीछैं चढ़ि लागैं ।।
सवा पहर लौं सेवा करैं। तब व्यौहार काज अनुसरैं ।।
पातसाह कौ मनसब खाते। प्यारे चाकर होत न हाँते[1] ।।
उद्यम करैं सो प्रभु कौ जानैं। हानि-लाभ ममता नहिं मानैं ।।
सेवा करि परसादहि पाइ। तब दरबारहिं साधत जाइ ।।
चुगल कहैं नृप लगे चाहनें। मुरलि बजावहु कही साह नैं ।।
तब ये बोले गोविन्ददास। जिनकै प्रभु की साँची आस ।।

दोहा—प्रभु आगे मुरली बजै, तुम आगे तरवार।
और कछू होंनी नहीं, यहै बात निरधार[2] ।।

पातसाह नें रिस करि कही। अंबर[3] कै मारौ तौ सही ।।
तब इन लटकौ कियौ जुहार। डेरा जितहिं चले तिहि बार ।।
करी प्रतिज्ञा पहुँच निवाही। अंबरचंपू के सिर वाही[4] ।।
बाँस पालकी कौं कटि लगी। तहाँ गोविन्द की प्रभुता जगी ।।
सूरंतन साहसहि सराहैं। जिन पठयौ ताकौं बिसराहैं ।।

दोहा—प्रभु सेवा में निपुन ज्यौं, त्यौं व्यौहारहि जान।
'भगवत' डरयौ न साह सौं, हरि प्रताप उर आन ।।
जिनके भृत्य[5] नि भृत्य तें, डरपैं बड़े नरिन्द।
तृन सम तिनहि गन्यौ नहीं, गोविन्द बल गोविन्द ।।
और कहा परचौ कहौं, पातसाह की बात।
मानी नहिं बल भजन के, चुके न अपनी घात ।।
इनके भ्राता पुत्र सब, रसिक अनन्य प्रवीन।
गुरुहिं समर्पित सकल निधि, इष्ट-भजन में लीन ।।
सुता दई गुरु के कहे, तजि उत्तमता ज्ञात।
'भगवत' परमारथ सुदृढ़, प्रगट जगत में ख्यात ।।

---

१ अलग। २ निश्चय। ३ इस नाम का एक राज द्रोही। ४ तलवार ५ दास

अथ श्री कल्याण पुजारी जी की परचई

दोहा—श्रीहरिवंश सुधर्म दृढ़, जगत क्रियातें ऐंड़[1]।
श्री राधावल्लभ इष्ट भजि, तोरी प्राकृत मैंड़[2] ॥

बड़े रसिक कल्याण पुजारी । रहनि-कहनि सबहिन तें न्यारी ॥
श्री वनचंद तें पायौ नाम । सेवा सौंपी पूरन काम ॥
श्रीजी की अंग-सेवा करैं । निज मंदिर तें नेकु न टरैं ॥
अपनें प्रभु कौं भोग लगावैं । संतनि ज्यावैं[3] जूठनि पावैं ॥
लैंहि सीथ[4] चरणामृत जन कौ । सुनि पुरान निश्चै किय मन कौ ॥
जब तौ ये एसे अनुरागे । कोउ-कोऊ दुख पावन लागे ॥
श्री दामोदरवरहि जनाई । इन सब मर्यादा जु घटाई ॥
तब तौ आप गुसाईं कही । राख्यौ वाही कौ मत सही ॥
भक्त और भगवान समान । यह सब कहत जु वेद-पुरान ॥
उत्तम होइ सो घट क्यौं कहिये । पूरे भाग बिना क्यौं लहिये ॥
एसे सब कौं वचन सुनाये । चुप ह्वै रहे चुगल सकुचाये ॥
इक दिन रास-विलास[5] जू एसें । कही पिता सौं हठ करि वैसें ॥
महा भ्रष्ट यह भयौ पुजारी । अब सेवा कौ नहि अधिकारी ॥
सुनि कल्याण गये गुरु पास । ताली सौंपी भये उदास ॥
तादिन सेवा औरनि कीनी । प्रीति बिना प्रभुजू लखि लीनी ॥
सुप्न गुसाईं सौं कहि 'भूखे । कल्याण बिना हम अति ही दूखे ॥
सेवा राग-भोग की रीति । वाकी-सी कोउ करै न प्रीति ॥
भक्तनि में मोमें नहि भेद । बोल कल्याणहिं हरि मन खेद ॥
करि सेवा वह भोग लगावै । तौ हम जैवैं और न भावै' ॥
यौं श्री दामोदर सौं बोले । जागे जाइ कपाट जु खोले ॥
सबनि सुनत कल्याण बुलायौ । प्रभुजू कह्यौ सो कहि समुझायौ ॥

१ टेढ़ापन । २ मर्यादा । ३ भोजन कराते थे । ४ उच्छिष्ट । ५ श्री दामोदरवर जी के दोनों पुत्र ।

'ज्यौं तुम करत हुते त्यौं करौ। अपनी निष्ठा तें जिन टरौ' ॥
तब तें सुख पायौ सब काहू। दोष तज्यौ क्रम-वच-मनसाहू ॥
और पुजारी की इक बात। इष्ट दरस तजि अनत न जात ॥
जे-जे अनत[1] दरस करि आवैं। इनके आगे बरनि सुनावैं ॥
तब ये कहैं 'प्रिया के चरन। देखे कहूँ पियहिं सुख करन' ॥
अपने इष्टहिं देख्यौ कीजै। और कहूँ मन जानि न दीजै ॥
जो ह्वाँ सुख-संपति अधिकाई। अपने लखि मानिये घटाई[2] ॥
जो कछु बात उहाँ घटि दीसै। तौ अपराध लगै निज सीसै ॥
दुहूँ भाँति मन मैलौ होई। पतिव्रत तजि भटकहु जिन कोई ॥
घटती-बढ़ती कहुँ न विचारै। सब ठाँ अपुनौं इष्ट निहारै ॥
प्रिया-चरण जहाँ नहीं प्रधान। सुख न लहैं तहाँ रसिक सुजान ॥

दोहा—एसे निष्ठावान अति, कल्याण पुजारी धीर।
को जानें 'भगवंत' यह, आसय अति गंभीर ॥

अथ श्री श्याम साह तूंवर जी की परचई

स्याम साह तूँवर कुल जाकौ। भये अनन्य कहौं जस ताकौ ॥
जा दिन गुरु कौ पाछौ लीनौं। तन-मन-धन सब अर्पन कीनौं ॥
तासौं हरि गुरुजन कौं भजैं। पुत्र कलत्रनि सौं हित तजैं ॥
कन्या एक बड़ी ह्वै आई। ज्ञाति-बंधु कियौ चहैं सगाई ॥
ये कहैं देहुँ तासु के घर हो। जो कोउ हमरौ कह्यौ सु करही ॥
इनकौ कह्यौ धनिक नहिं मानैं। निर्धन होइ सोई उर आनैं ॥
कोउ गरीब हौ सो घर आयौ। ताकौं गुरु पै नाम सुनायौ।
धर्म अनन्य सिखायौ सब ही। करी सगाई ताकौं तब ही।
कन्यादान आप नहिं कियौ। गरणपति-ग्रह-सुर-जजन[3] न छियौ[4]।

---

१ अन्यत्र। २ कमी। ३ पूजन। ४ स्पर्श किया।

प्रभु की वस्तु जानि सब राखी । तौ संकलप करम-विधि नाखी[1] ।।
स्त्री सहित वृन्दावन आये । पद-रचना करि जुगल लड़ाये ।।
नन्दराइ वृषभानु कैं आये । परिकर जुत सब न्यौत बुलाये ।।
सो ज्यौंनार भली विधि वरनी । बानी और रसिक-मनहरनी ।।
बैठि पुलिन में ध्यान लगायौ । जुगल-रूप नैननि दरसायौ ।।
देखत छबि तनमय ह्वै गये । कुंजमहल कौं प्रापत भये ।।

अथ श्री कन्हर स्वामी जी की परचई

ऐसे हि कन्हर स्वामी रहे । राधावल्लभ पद दृढ़ गहे ।।
अरु स्वामी हरिकृष्ण हु ऐसे । इन हूँ श्रीपद सेये तैसे ।।
अङ्गसेवा नीकी विधि करी । प्रभु के दर्व्य न मनसा धरी ।।
पृथक आपुनौं भोग लगावैं । वहै प्रसाद साधु मिलि पावैं ।।
सीथ लेते हे ज्यौं कल्याण । त्यौंही येहू करत सुजान ।।
अरु हरिकृष्ण पुजारी सोऊ । तिन की सरबर करै न कोऊ ।।
सुमिरन पाठ इष्ट की सेवा । तत्पर रहैं, तजे कुल देवा ।।
इष्ट अपने कौ लैं परसाद । ता बिनु और न लीनौं स्वाद ।।
बड़ड़े ठाकुर द्वारे जहाँ । देखे भेदहिं[2] करते तहाँ ।।
उनहीं कै न प्रसाद-प्रतीति । तिन के कर लैबौ विपरीति ।।
जो प्रसाद में निष्ठा होती । तौ इक रस रहते तजि दोती[3] ।।
अपने हि प्रभु के महा प्रसादहिं । भक्ष-अभक्ष[4] विचारत त्यागहिं ।।
आपहि अपने इष्टहिं अपैं । तामें अन्न बुद्धि करि थपैं[5] ।।
निर्गुन कौं गुनमय करि मानें । इष्ट-प्रसाद प्रताप न जानैं ।।
जिनकौं काम-क्रोध बस देखैं । तिन हूँ में प्रभु कौ कृत लेखैं ।।
कर्कस वचन न कबहूँ कहें । जो कोउ कहै ताहि सहि रहें ।।

---

१ छोड़ दी । २ एकादशी और साधारण दिनों का भेद । ३ द्विविधा । ४ खाने योग्य और न खाने योग्य । ५ स्थापित करते हैं

अथ श्री रसिकदास जी की परचई

दोहा—विजै-मूर्ति हरिवंश की, हैं प्रपौत्र रसकन्द ।
रसिक सभा के मुकुटमणि, श्री दामोदरचन्द ।।
तिनके शिष्य-प्रशिष्य, बहु रसिक अनन्य प्रसिद्ध ।
कछुक कहौं संक्षेप सौं, उनके गुन तौ वृद्ध ।।

रसिकदास काइथ प्रेमाकर । बसै बैराट अनन्य रसिक बर ।।
पुनि कीनौं वृन्दावन वास । गृह-आश्रम तें रहें उदास ।।
पुष्ट शरीर प्रेम रस भरे । सकल उपासक के मन हरे ।।
गुरु-ग्रन्थनि कौ सदा विचार । करत मानसी सहज सुढ़ार ।।
हितजी की वानी नित पढ़ैं । त्यौं-त्यौं रंग प्रेम के कढ़ैं[१] ।।
पाठ करत जा पद मन अटकैं । पुनि-पुनि वहै रूप-रस गटकैं[२] ।।
छबिली छटा तनमय ह्वै जाहिं । गिरैं मूर्छित द्यौस[३] विहाहिं[४] ।।
इक दिन ऐसहिं आयौ प्रेम । ठाड़े तें गिरि परे अनेम ।।
करछी ही टोकनी[५] जु माहीं । गिरतैं जाँघ फूटि दरसाही[६] ।।
आहट सुनि सब जन घिरि आये । बल करि करछी काढ़ि सुवाये ।।
आठ पहर पाछैं सुधि भई । रोम-रोम दम्पति छबि छई ।।
बार पार करछी कौ घाय । नहिं जनिये कित गयौ बिलाय ।।
एसहिं श्री वृन्दावन बसैं । दिन-दिन प्रेम चढ़ै, अलि लसैं ।।
एक दिना अपने गुरु-धाम । करत भावना बितवत जाम ।।
यमुना में जगमगैं सतेसा[७] । परिकर जुत लखि दम्पति बेसा ।।
तिन के सनमुख ह्वै उठि दौरे । नीचे गिरे प्रेम-रस बौरे ।।
साठ हाथ ऊँचे ते परे । मनहुँ किनहुँ फूलनि में धरे ।।
जब सुधि भइ ह्वाँ तें उठि आये । पिछली रात कपाट खुलाये ।।
पूंछैं सब तुम तिखने ऊपर । कित ह्वै गये बाहिरी भूपर[८] ।।

---

१ निकलते थे। २ पीते थे। ३ दिन। ४ व्यतीत हो जाते थे। ५ बटलोई। ६ जाँघ को बेध कर पार निकल गई। ७ बड़ी नावें। ८ जमीन पर।

ौरत में जिन धमकौ सुन्यौ । गिरि परिबे कौ ब्यौरौ भन्यौ ॥
जब गुरु-बरजू सौंह दिबाई । तब जु भावना ही सु बताई ।
कबहुँ प्रसाद लेत नहिं हारैं । बीतें दिन बिन लिये अहारैं ।
इक दिन मान सरोवर चले । पुलिन मध्य भोग धरि भले ।
आपुन पुलिन प्रसादहिं पावत । यह भावना कहि न कछु आवत।
एसे इनके बहुत चरित्र । भगवत सुनि-सुनि होत पवित्र ।

अथ श्री मोहनदास जी की परिचइ

दोहा—अब सुनि मोहनदास गुन, परम रसज्ञ प्रवीन ।
सेवा अपने इष्ट की, करत भावना लीन ॥
मोहन माधुरीदास कौं, सब कोउ मानैं भक्त ।
सब तें मन कौं खैंचि कैं, इष्ट विषैं अनुरक्त ॥
तिनके सुत तिनतें अधिक, भये माधुरीदास ।
जगत-क्रिया परसी नही, दृढ़ मन गुरु की आस ॥

अथ श्री द्वारिकादास जी की परचइ

द्वारिकादास गुरु सेवी कैसे । देखे सुने न कलि में एसे
श्री दामोदर गुरु सु पधारे । मंगल-मोद बहुत विस्तारे[१]
सर्वसु धन गुरु आगे राख्यौ । महादीन ममता तजि भाख्यौ
इक-इक धोती पहिर दोऊ जन । पति-पतिनी जु समर्प्यौं सब धन
अस्सी-सहस रुपैया रोक[२] । बासन वसन आभरन थोक[३]
रथ सुखपाल पालकी घोरे । दासी-दास सहित कर जोरे
हाथ बाँधि गुरु आगें ठाड़े । धर्म निवेदन[४] में अति गाढ़े

१ बहुत आनन्द-मङ्गल मनाया । २ नक़द । ३ समूह । ४ निवेदन (भे

मृदु बचननि करि अस्तुति करी। तुम्हरि वस्तु हम ममता धरी ॥
तुम जग सृज-पालत-संहारत। तुम हीं स्वर्ग-नर्क तें तारत ॥
ताहि जीव अपनी करि मानें। नर्क परैं करि-करि अभिमानें ॥
तुम करुना करि नाम सुनायौ। परम धर्म रस रूप जनायौ ॥
काल-ग्रसित प्रपंच तें न्यारे। प्रभु के भक्त रु धाम निहारे ॥
एसे कपट विना सुनि बैन। तब प्रभु[1] बोले सब सुख दैन ॥
या धन के तुम ही भण्डारी। और नहीं कोऊ अधिकारी ॥
हमरी अज्ञा प्रभु कौं भजौ। राग भोग करि संतनि जजौ[2]॥
यह संपति हम तें कब न्यारी। आवै जाहि सु सबै हमारी ॥
एसे कहि पोख्यौ निज सेवक। कियौ अनन्य धर्म कौ भेवक[3] ॥
जो चाह्यौ भायौ सो लह्यौ। अप अपनौं करि ताही दयौ ॥
एसें अपने इष्ट अराधे। समैं भोग उत्सव सब साधे ॥
पुत्र-कलत्रनि सौं न ममत्त[4]। गुरु-भक्तनि सौं मानि इकत्त[5] ॥
सन्त-महन्त कहे तें जानी। सो सुनि भगवत् मुदित बखानी ॥

अथ श्री पहुकरदास जी की परचई

श्री दामोदर चरन उपासी। पहुकरदास काठले वासी ॥
कुल बनिकनि कौ पावन कियौ। प्रभु गुरु-भक्तनि कौं सुख दियौ ॥
श्री जी कौं जो उत्तम दर्व। भोग वसन-भूषन लौं सर्व ॥
जो-जो भली वस्तु लखि पावैं। लैंइ मोल प्रभु कौं पहुँचावैं ॥
कंचन-सूतनि तनैं वितान। पिछवाई अगवाई बान ॥
सिज्या सिंहासन चौडोल। अङ्ग-वसन आभरन अमोल ॥
सौने-रूपे के बहु भाजन। मेवा विविध सुगंध विराजन ।
तीज हिंडोरे इष्ट झुलाये। उत्सव बहु विधि फागु खिलाये ।

---

१ श्रीदामोदर गोस्वामी। २ पूजन करो। ३ ज्ञाता। ४ ममत्व। ५ एकता।

फूलनि महल ठाठ बहु कीने । वनविहार के सब सुख लीने ॥
कुंज-सेवा की रचना जिती । पट-भूषण सुगंध लौं तिती ॥
महल तिवारी कोट बनायौ । राग भोग बहु विविध सुहायौ ॥
नंदीस्वर[1] बरसानौ आदि । जे-जे ब्रज में स्त्रूप[2] अनादि ॥
तहाँ-तहाँ वर्षासन भूषन । पट मेवा पठवैं निर्दूषन[3] ॥
अति उदार मन-तन-धन अर्प्यौ । इहिविधि जन्मसफलकरिथप्यौ[4] ॥

दोहा—साँचौ हित गुरु इष्ट सौं, एसे अमित चरित्र ।
कछुक सुने ते लिखनि कर, 'भगवत' होत पवित्र ॥

१ नंदगाँव २ भगवद्-विग्रह ३ शुद्ध ४ स्थापित किया

परिशिष्ट—अ

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती विरचितं—

श्रीहित हरिवंशचन्द्राष्टकम्

✱

१

त्वमसि हि हरिवंश श्यामचन्द्रस्य वंशः,
परमरसद नादै र्मोहिताशेष विश्वः।
अनुपम गुणरत्नैर्निर्मितोऽसि द्विजेन्द्र,
मम हृदि तव गाथा श्चित्रलेखेव लग्नाः।

२

द्विजकुमुद कदम्बे चन्द्रवन्मोदकस्त्वं,
मुहुरतिरस--लुब्धालीन्द्र वृन्दे भ्रमरो।
अतुलित रसधारा वृष्टि कर्तासि नादै--
र्विलसतु मम बाधा-मूर्ध्नि जिष्णोरिवास्त्रम्॥

३

अधिक रसवतीनां राधिकायाः सखीनां,
चरण कमल वीथी कानने राजहंसः।
तदति ललित लीला गान विद्वत्प्रशंसः,
स जयति हरिवंशो ध्वंसकोऽसौ कलीनाम्॥

४

अतुलित गुण राशि प्रेम माधुर्यभासि--
प्रणत कमल वंशोल्लासदायी सुहंस।
अखिल भुवन शुद्धानन्दसिन्धु प्रकाशः,
स जयति हरिवंशः कृष्णजीवाधिकांशः।

५

गुण गण गणनै र्यैर्वंश्यते वश्य कृष्ण,

स्तरति कलयतो यद्वार्तया सत्कदम्बः ।

निरवधि हरिवंशे तेऽत्र सा च प्रभाति,

नहि-नहि बुध तस्मात्कृष्णराधास्वभक्तिः ॥

६

हृदय नभसि शुद्धे यस्य कृष्णप्रियाया--

श्चरण नखर चन्द्रा भान्त्यलं चञ्चलायाः ।

तदति कुतुक कुञ्जे भावलब्धालिमूर्तिः,

स जयति हरिवंशो व्यासवंश प्रदीपः ॥

७

चरणकमलरेणुर्यस्य संसार सेतुः,

पविरिव सुविलासी दर्पशैलेन्द्रमौलौ ।

कलुषनगर दाही यस्य संसर्गलेशः,

स जयति हरिवंशः कृष्णकान्तावतंसः ॥

८

रमण जयन नृत्योद्भ्रामकोत्तालपूरा-

त्तदतिललित कुञ्जादाज्ञयाराद्रुपेत्य ।

ललित भजन देहे मानुषे स्वेश्वरौ तौ,

स जयति हरिवंशो लब्धवान् यः समक्षम् ॥